आधुनिक एकांकी नाटक

संपादक

श्री उदयशंकर भट्ट

मोतीमाला का इक्कीसवाँ रत्न

आधुनिक एकांकी नाटक

(हिन्दी कलाकारों के सात एकांकी नाटकों का
अपूर्व एवं मौलिक संग्रह)

सम्पादक

श्री उदयशंकर भट्ट

श्री श्री

प्रकाशक

मोतीलाल बनारसीदास

हिन्दी-संस्कृत पुस्तक विक्रेता

सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

द्वितीय संस्करण] सन् १९४० [मूल्य १।)

प्रकाशक
सुन्दरलाल जैन, मैनेजिंग
प्रोप्राइटर, मोतीलाल बनारसीदास
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर ।

मुद्रक
शान्ति लाल जैन
बम्बई संस्कृत प्रेस,
शाही मुहल्ला, लाहौर।

सूची

भूमिका	१
१ श्री सुदर्शन	१६
राजपूत की हार	२१
२ श्री रामकुमार वर्मा	५५
दस मिनट	५७
३ श्री भुवनेश्वर बी. ए.	७७
स्ट्राईक	७६
४ श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'	१०५
लक्ष्मी का स्वागत	१०७
५ श्री भगवतीचरण वर्मा	१३५
सब से बड़ा आदमी	१३७
६ श्री धर्मप्रकाश आनन्द	१५७
दीनू	१५६
७ श्री उदयशंकर भट्ट	१८१
दस हज़ार	१८३

भूमिका

साहित्य की उपपत्ति

साहित्य में सौन्दर्य का सब से ऊँचा स्थान मिला है। ज्ञान का स्थान साहित्य में कैसा ही हो, पर उसकी विवेचना से मानव का स्वास्थ्य अवश्य सुधरा है, ऐसा मानना पड़ेगा। मूलतः ज्ञान दो तरह का है एक साधारण दूसरा विशेष। साधारण ज्ञान से जगत् के व्यापार चलते हैं। खाना, पीना, उठना, बैठना, सोना तथा अन्य व्यापार मनुष्य की जीवन गति में सहायक होते हैं; रात्रि का ज्ञान, दिन के प्रकाश का ज्ञान, वर्षा का आगमन, ऋतुओं का परिवर्तन ये साधारण ज्ञान-तत्व उसे उठते बैठते सहायता प्रदान करते हैं। इस के लिये उसे विशेष प्रयत्न भी नहीं करना पड़ता। आहार और बात चीत की तरह उसे प्रकृति अपने आप प्रदान करती है। परन्तु विशेष ज्ञान के लिये मनुष्य को विशेष व्यापार करना पड़ता है। वह उन का अध्ययन करता है, गुरुओं से सुनता है, मनन करता है, विवेचन करता है तब कहीं जाकर उस की आत्मा में उस भाव की ज्योति प्रकट होती है। एक उदाहरण दे कर इसे स्पष्ट करना होगा। हम देखते हैं सूर्य अपने नियत समय पर निकलता है और अपने आप बिना किसी के कहे सुने अस्त होजाता है। उस में किसी भी मनुष्य के प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

आषाढ़ मास के प्रारम्भ में वर्षा का आगमन होता है और क्वार के महीने तक उसका अन्त हो जाता है। यह ज्ञान हमारे व्यवहार में सहायक है। हम इसे दिन रात देखते हैं, जानते हैं, परन्तु यह हमारे लिये बहुत आवश्यक नहीं है। तब क्या यह अनावश्यक है! कहना होगा कि यह ज्ञान भी साँस की तरह मूलतः हमारे मस्तिष्क से आबद्ध नहीं है। हमने यह अपने आप प्राप्त किया है, परन्तु पृथ्वी गोल है, तारों का, सूर्य का प्रकाश पृथ्वी पर कितनी देर में पहुँचता है, विद्युत् वस्तुतः क्या पदार्थ है, मेघ के जीवन में उसका क्या उपयोग है, आदि काल में मनुष्य किस तरह रहे होंगे, उन्होंने प्रारम्भ में किस तरह रहना, खाना सीखा होगा, सृष्टि का आदिम मानवीय व्यापार कैसा होगा-आदि बातें हमें विशेष अध्ययन से प्राप्त होंगी, उन के लिये हमें पढ़ना होगा। इस का फल एक साधारण मनुष्य के लिये चाहे कुछ भी न हो परन्तु हमारे इतिहास में इसका एक विशेष महत्व है। आज के मनुष्य के साथ उस समय के मनुष्य के ज्ञान की जो अप्रत्यक्ष शृंखला बँधी चली आ रही है, उस की नैतिक, सांस्कृतिक, धाराओं का स्पष्ट प्रभाव हमें मालूम होगा। यह विचारधारा हमारी भौगोलिक परिस्थिति और हमारे इतिहास पर एक विशेष प्रकाश डालेगी। और आगे चलने के लिये हमें 'टार्च' का काम देगी। परन्तु यह ज्ञान न तो हमें कोई विशेष सुख देता है और न हम उस से कोई विशेष आत्मानुभूति प्राप्त करते हैं। यदि इस ज्ञान में सुख दुःख, प्रेरणा, करुणा का

उद्रेक मिला हो, मनुष्य या प्रकृति के हृदय की तीव्रता, शिथिलता, प्रेम, राग, द्वेष गर्भित हो, तो वह चीज़ एक साधारण मनुष्य को भी अपनी ओर खींच सकती है। वह आज के पढ़नेवाले को उस आदि युग के मनुष्य के भावों के साथ मिला कर तन्मय बना देगी। वह भूल जायगा कि वह आज के किसी मनुष्य की चिन्ता, राग, द्वेष से अभिभूत हो रहा है या उस आदि काल के नर की भावना से प्रेरित। बस, इस राग, द्वेष, करुणा, दया, सुख, दुख की परम्परा-गत अनुभूति को जो प्रदान करता है, वही साहित्य है। ज्ञान उस अनुभूति का सजग रूप होते हुए भी गौण है। वस्तुतः शुद्ध ज्ञान न तो हमारे लिये कोई प्रेरणा है और न उस के साथ हमारी कोई सहानुभूति !

मनुष्य की सदा से चेष्टा रही है कि वह शुद्ध अनुभूति को दूसरों को प्रदान करे। अपने शुद्ध सुख दुख को संसार में बाँट दे। अपनी व्याप्त चिन्ताओं को दूसरों को सुनावे। परन्तु उन रूपों को वह वैसे ही ढंग से नहीं सुना सकता, उसे व्यक्त करने क लिये भाषा, भाव, अभिव्यंजना की आवश्यकता होगी। एक तरह से यों कहना होगा कि उस की अभिव्यंजना का आधार ही पाठक के हृदय पर प्रभाव डालने का मूल कारण है। बाज़ार जाते या वहाँ से लौटते हुए हम कभी कभी पाते हैं कि एक मुर्दा चला जारहा है, उसके साथी रोते, पीटते विलाप करते जा रहे हैं। 'राम नाम सत्य है' की ध्वनि से उस समय का वातावरण क्षुब्ध और नश्वर हो उठा है, इतने पर भी हम देखते हैं बाज़ार में चलने वाले बराबर चले जा

रहे हैं। जो मिठाई खरीदने घर से निकला है, वह उस मुर्दे को देख कर चिन्तित हो कर खाली नहीं लौट रहा है । जो मनुष्य अपनी नववधू के लिये कपड़ा खरीदने घर से निकला है, वह भी बिना कपड़ा लिये घर नहीं लौटता। यह बात उन्हें एक क्षण के लिये भी समझने की आवश्यकता नहीं है कि एक दिन जिन के लिये मिठाई ले जा रहा है, जिस वधू के लिये वह कपड़े खरीद रहा है, वे इसी प्रकार काल की सवारी पर चढ़कर सदा के लिये ओझल हो जायँगे। दुकानदार भी दुकानें बन्द करके इसी चिन्ता में घर लौटते हुए कभी नहीं देखे गये। परन्तु किसी लेखक की प्रौढ़ अभिव्यंजना से युक्त उसी मुर्दे की कहानी को 'कि किस तरह वह मरा उसके घर की क्या अवस्था हो गई' जब वे लोग पढ़ते हैं तो उन की आँखों में आँसू आजाते हैं। मिठाई खाने को तैय्यार व्यक्ति अपनी उस तश्तरी की ओर बिना देखे कहानी पढ़ता है, अपनी नव वधू के कपड़े दर्जी के यहाँ देने का उसका विचार कुछ क्षण के लिये रुक जाता है। दुकानदार दुकान की चिन्ता छोड़ कर उसी में तन्मय हो जाता है। इन बातों की वाक्यात्मक अभिव्यक्ति का नाम काव्य, कहानी है और उसी की क्रियात्मक अभिव्यक्ति को नाटक कहते हैं।

हाँ, तो काव्य, कहानी का यह ज्ञान जितना स्वाभाविक है उतना ही उसका प्रत्यक्ष दर्शन भी। नाटक के तत्व काव्य की अपेक्षा स्थूल भी हैं, परन्तु वे अपनी स्थूलता में काव्य का सूक्ष्म

प्राण भी वहन करते हैं। कहानी की आत्मा को प्रत्यक्ष का आवरण पहना कर चलते हैं। इस लिये वे दोनों तत्वों की अपेक्षा अधिक प्रिय और अधिक व्यापक है।

काव्य और कहानी में हृदय तत्व के साथ कानों और पठनीय व्यापार की प्रमुखता रहती है और नाटक में हृदय के साथ आँखों का भी महत्व है। जिस तरह उपर्युक्त वस्तु के लिये हृदय की साधना अपेक्षित है उसी तरह नाटक में हृदय का गौरव पूर्ण स्थान है। परन्तु इन दोनों की साधना में मस्तिष्क के विकास, हृदय के उन चेतन तन्तुओं में धारणा की क्षमता की आवश्यकता है। उसी को हम 'संस्कृति' कहते हैं। यह संस्कृति मानव **को जीवन के साथ माता पिता से मिलती** है। जहाँ और जितनी दूर तक वे तन्तु परिपक्व होते हैं वहाँ और उस अवस्था तक उस की साहित्यिक संस्कृति विकसित होती है। यही कारण है कि हम अफ्रीका की बर्बर जाति में उन तत्त्वों की प्रबलता नहीं पाते, जितनी कि योरोप को विकसित और सभ्य जातियों में। फलतः नाटक, काव्य और कहानी की तरह उन्हीं तन्तुओं का क्रियात्मक अभिव्यक्तीकरण है। मानव का मानवत्व, देवत्व, राक्षसत्व, स्वभावरूप रंग, रेखा की अभिव्यक्ति जिस आरोपमय व्यापार से होती है उसी को नाटक कहते हैं।

नाटक के बीज

बहुत पुराने समय से नाटक के प्रति लोगों की आस्था रही है। यहाँ तक कि ऋग्वेद जैसे मान्य ग्रन्थ में नाटकों के सूत्र मिलते हैं।

वैदिक काल में सम्भवतः यज्ञ के समय नाटक हुआ करते थे। यजमान, सोम विक्रेता और अध्वर्यु के संवाद नाटक का प्रारम्भ हैं। देवताओं के आगे भी नाटकों के खेले जाने की प्रथा थी, ऐसा कई प्राचीन ग्रंथों से ज्ञात होता है।

लौकिक संस्कृत में इसका काफ़ी प्रचार रहा होगा, ऐसे प्रमाण मिलते हैं, परन्तु हमें इनका इतिहास लिखने की आवश्यकता नहीं है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि नाटकों की कल्पना नई नहीं है। वे बहुत पुराने और मनुष्य के ज्ञान-प्राप्ति के काल के हैं। अग्निपुराण और भरत के नाट्य-शास्त्र तथा अन्य संस्कृत के लक्षण ग्रन्थों में इन के प्रचुर परिमाण में होने के बीसियों प्रमाण मिलते हैं। कई लोगों का यह विचार है कि "हिन्दी के वर्तमान नाटकों की धारा योरोप से आई है, संस्कृत के नाटकों से हमने कुछ भी नहीं सीखा। एकांकी नाटक तो स्पष्टतः योरोप की देन हैं।" हो सकता है वर्तमान नाटक शैली को हमने योरोप से लिया हो। परन्तु हमें मालूम होना चाहिये योरोप से नाटकों की अभिव्यंजना को लेते हुए भी हमारे यहाँ नाटकों और उन की शैली की कमी नहीं थी। उनके कई भेद थे:—

(१) नाटक

(२) प्रकरण

(३) भाण

(४) व्यायोग

(५) समवकार

(६) डिम

(७) ईहामृग

(८) अंक

(९) वीथी (इसके १३ और भेद हैं—उद्घात्यक, अवगलित, प्रपंच, त्रिगत, छल, वाक्केलि, अधिबल, गण्ड, अवस्यन्दित, नालिका, असत्प्रलाप, व्याहार, मृदव)

(१०) प्रहसन (संकीर्ण प्रहसन, विकृत प्रहसन)

(११) नाटिका

(१२) त्रोटक

(१३) गोष्ठी

(१४) सट्टक

(१५) नाट्य रासक

(१६) प्रस्थानक

(१७) उल्लाप्य

(१८) काव्य

(१९) प्रेंखण

(२०) रासक

(२१) संलापक

(२२) श्रीगदित

(२३) शिल्पक

(२४) विलासिका

(२५) दुर्मल्लिका

(२६) प्रकरणिका

(२७) हल्लीश

(२८) भाणिका

इन उपर्युक्त नाटकों और उनके भेदों को विस्तार से संस्कृत साहित्य के लक्षण ग्रन्थों में लिखा गया है। यहाँ केवल इन भेदों को लिखने का तात्पर्य यही है कि इन में कुछ एकांकी और कुछ अनेकांकी नाटक हैं। **नाटक में** प्रायः दस अंक होते हैं। **प्रकरण** में कथा लौकिक और कविकल्पित होती है। इस में प्रधान रस शृंगार होता है, अंक उतने ही। **भाण** धूर्तों के चरित्र से युक्त एकांकी होता है। इस में केवल एक विट, जो बड़ा चतुर और पंडित होता है मंच पर अपनी और दूसरों की अनुभूति बातें प्रकाशित करता है। **व्यायोग** की कथा इतिहास प्रसिद्ध होती है। इस में स्त्रीपात्र थोड़े होते हैं! गर्भ[1] और विमर्श सन्धियों से रहित पुरुष पात्रों की अधिकता होती है। इस में केवल एक ही अंक होता है। **समवकार** में देवता और असुरों के सम्बन्ध की कथा होती है। विमर्श के अतिरिक्त इस में चार संधियाँ, तीन अंक होते हैं। **डिम** की

१ गर्भ और विमर्श आदि संधियों तथा पताका प्रकरी आदि के लिये हिन्दी संस्कृत के लक्षण ग्रन्थों का अध्ययन उपयुक्त होगा। रूपक रहस्य, साहित्य दर्पण से बहुत कुछ ज्ञात हो सकेगा।

कथा इतिहास प्रसिद्ध होती है। माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध और ग्रहण के वृत्त से व्याप्त रूपक **डिम** कहलाता है। इस में चार अंक होते हैं। रौद्ररस अंगी होता है। **ईहामृग** में कल्पित और ऐतिहासिक एवं मिश्रित कथाएँ होती है, चार अंक होते हैं **अंक**—एक ही अक का होता है। स्थायी रस करुण होता है। पात्र साधारण पुरुष और स्त्री होते हैं। **वीथी** में एक ही अंक होता है। आकाश-भाषित द्वारा उक्ति प्रत्युक्ति होती है। निन्दनीय पुरुषों का कविकल्पित वृत्तान्त **प्रहसन** होता है। इस में न आरभटी होती है और न विष्कम्भक तथा प्रवेशक ही होते हैं।

नाटिका के भी चार अंक होते हैं, तथा कविकल्पित कथा होती है। सात, आठ, नौ अथवा पाँच अंकों से युक्त **त्रोटक** होता है। इस के प्रत्येक अंक में विदूषक रहता है। **गोष्ठी** में एक अंक होता है। इस में पाँच छः स्त्रियाँ तथा नौ दस प्राकृत पुरुष होते हैं।

सट्टक प्राकृत भाषा में होता है। **नाट्य रासक** में एक ही अंक होता है। इसे आजकल गीति नाट्य कहा जाता है। **प्रस्थानक** में दो अंक होते हैं। **उल्लाप्य** में भी एक ही अंक होता है। **काव्य** नाटक में भी एक ही अंक होता है। **प्रेंखण** में भी एक ही अंक होता है। इस में सूत्रधार, प्रवेशक, विष्कम्भक नहीं होते।

रासक पाँच पात्रों, एक अंक, वीथ्यंगों और नाट्य कलाओं से युक्त होता है। संलापक में चार अंक, पाखण्डी नायक, शृंगार करुण

से भिन्न रस होते हैं। **श्रीगदित** प्रसिद्ध कथा से युक्त, धीरोदात्त नायक से युक्त एक अंक में समाप्त होता है। शिल्पक में चारों वृत्तियाँ, शान्त, हास्य से रहित रस तथा ब्राह्मण नायक होता है।

विलासिका शृंगार लय युक्त एक अंक की होती है। **दुर्मल्लिका** में चार अंक, भारती तथा कौशिकी वृत्ति होती है। **भाणिका** में नेपथ्य मुख निर्वहण आदि सन्धियाँ रहती हैं। पाठक देखेंगे कि प्राचीन काल में भाण, व्यायोग, अंक, वीथी, गोष्ठी, नाट्य, रासक, उल्लाप्य, प्रेंखण, श्रीगदित, विलासिका तथा हल्लीश एक अंक के नाटक होते थे। वृत्ति, संधियों एवं नायक नायिका तथा कथा क भेद से इन की रचना होती थी जो आज कल के ढंग से ही लिखे जाते थे हाँ इतना अवश्य है कि प्राचीन काल की तरह आज कल के नाटकों में सन्धियों, कथानकों एवं विशेष प्रकार के नायक नायिकाओं के बन्धन नहीं रहे हैं। आज कल के नाटकों में स्वगत, आकाशभाषित, विष्कम्भक, सन्धियों की भी उतनी आवश्यकता नहीं रही है। नाटकों की रचना आज कल मुख्यतः नाट्यकला के विकास एवं वस्तु के स्पष्ट अभिव्यक्तीकरण की दृष्टि को लक्ष्य में रखकर ही की जाती है।

पाश्चात्य नाटक

पाश्चात्य देशों में पहले नाटक के भिन्न भिन्न रूप होते हुए भी एकांकी नाटकों का अभाव था। अब से लगभग चालीस साल पूर्व हिन्दी में एकांकी नाटकों का कोई रूप न था। नाट्यशाला में पहले

पहुँचने वाले दर्शकों का मन न ऊबने देने के लिये एकांकी नाटकों की रचना का सूत्रपात हुआ था । परन्तु बाद में यह एक कला और अभिनय का एक मुख्य अंग बन गई । इस को Curtain Raiser के नाम से पुकारा जाता था । यानी असली बड़े नाटक के प्रारम्भ करने से पहले छोटे नाटक खेले जाते थे । और धीरे धीरे इस प्रकार के नाटककारों का जन्म हुआ । ए. ए. मिनी, ओर्नेल्ड बेनेट, जानगल्सवर्दी, लार्ड डन्सेनी, जे, जे, बेल, जान ड्रिंकवाटर आदि प्रथम नाटककारों ने एकांकी नाटकों की रचना की। और इस के बाद तो योरोप में एकांकी नाटकों की बाढ़ आगई । इस समय तो एकांकी को बड़े नाटकों से भी अधिक महत्व दिया जा रहा है । तथा एकांकी नाटकों के अंग्रेज़ी में बीसियों संग्रह हैं । पिछले दिनों लण्डन की 'जार्ज. जी हेरप' कम्पनी ने प्रायः सभी एकांकी नाटककारों के नाटकों का संग्रह लगभग सात भाग में निकाला है । 'पेनगिन बुक्स' कम्पनी ने भी इसी प्रकार के श्रेष्ठ एकांकी नाटकों का संग्रह प्रकाशित किया है। अंग्रेज़ी में इस समय कुछ एकांकी नाटक तो ऐसे हैं जिन में एक अंक में कई दृश्य दिखाये गये हैं और कुछ एक ही दृश्य के एकांकी । श्री बर्नार्डशाह ने तो अंक भी उड़ा दिये हैं। उनके नाटकों में केवल बड़े बड़े दो तीन दृश्यों में नाटक समाप्त हो जाता है । 'मेन एण्ड सुपर मेन' उनका ऐसा ही नाटक है । इन छोटे नाटकों और बड़े नाटकों में भेद इतना ही है जितना उपन्यास और कहानी में ।

एकांकी नाट्य कला

एकांकी नाटकों के सम्बन्ध में कुछ लोगों की धारणा है कि वे कला की दृष्टि से कुछ भी नहीं है। इस पर विचार करना होगा। जिस प्रकार जीवन एक होते हुए भी समष्टि से बँधा हुआ चलता है। श्वास, उच्छ्वास, हृदय के व्यापार, सुख, दुख, राग, द्वेष की मानव में सदा ही अभिव्यक्ति होती रहती है, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता वह अभिव्यक्ति उस की अपनी ही है। बाहर की वस्तुओं का प्रतिक्षण मनुष्य पर आघात प्रत्याघात होता रहता है। प्रकृति के प्रत्येक रूप से उसे जीवन को स्थिर रखने, बढ़ाने और घटाने की क्षमता प्राप्त होती रहती है, इसी प्रकार नाटक में मनुष्य का व्यक्तिगत रूप समाज और प्रकृति से सहायता लेकर चलता है; आगे बढ़ता है, पीछे हटता है, स्थिर रहता है, उद्भ्रान्त हो जाता है, सुख पाता है। देश, काल, परिस्थिति, योग्यता, प्रकृति और आवश्यकता के अनुसार प्राणी का स्वभाव बनता है। वह स्वभाव ही उसका व्यक्तित्व है। ये ऊपर कही हुई बातें इतनी सूक्ष्म होती हैं कि मनुष्य की पृथक्ता का रूप बिना गहरा अध्ययन किये समझ में नहीं आसकता। नाटककार अपनी प्रतिभा से वैसा वातावरण बनाकर उसके व्यक्तित्व को जगत् के सामने जाग्रत करता है। और क्रमिक विकास की सीढ़ियों से उसका वास्तविक रूप निर्धारण करता है। काव्य या कहानी में यह मात्रा शब्दों द्वारा हृदय को छूती है और नाटक में प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा। फलतः बड़े

नाटकों में जीवन की वह प्रवृत्ति अन्तर और बाह्य संघर्ष के साथ बढ़ती है। उस में जीवन की एक बड़ी घटना जिसे नाटककार प्रत्यक्ष कर के दिखाता है संवाद, वस्तु और वातावरण द्वारा पुष्ट होती है। परन्तु एकांकी नाटक में जीवन का एक अंश, परिवर्तन का एक क्षण, सब प्रकार के वातावरण से प्रेरित घटना का झोका—दिन में एक घण्टे की तरह, मेघ में बिजली की चमक की तरह, बसन्त में फूल के हास की तरह—व्यक्त होता है। पुस्तक में जिस प्रकार चेप्टर का महत्व है, वृक्ष में जिस तरह शाखाओं की 'टर्न' का महत्व है इसी प्रकार बड़े नाटकों के सामने एकांकी नाटक का भी महत्व समझना चाहिये। बड़ा नाटककार सम्राट्—अशोक को अहिंसावादी बनाने के लिये उस का पूर्व स्वभाव, उस समय की राजनीति, प्रजा की अवस्था, कलिंग की लड़ाई, हिंसा की उग्रता, देश काल की परिस्थिति बतावेगा, परन्तु एकांकी लेखक केवल कलिंग युद्ध के रणस्थल का दृश्य दिखा कर उस के स्वभाव परिवर्तन और भारत के भविष्य के लिये शुभ होनेवाले उस के अहिंसा प्रेम को जागरूक कर देगा। वह निशाना मारने के लिये दुर्योधन और युधिष्ठिर की तरह उस चिड़िया का सिर, पैर, पंख नहीं देखता, वह तो अर्जुन की तरह केवल लक्ष्य की ओर आँख रखता है। वह देखता है जीवन का मोड़, स्वभाव की प्रतिगामिता, चित्र की एक झलक। उसे न वर्षों तथा युगों में समाप्त होने वाले जीवन से कोई संबन्ध है और न अंकुर, पौदे फिर लता, कली और

फूल से। वह तो केवल कुछ दिनों, कुछ घण्टों, कुछ मिनटों में मनुष्य के रूप की, हृदय की प्रवृत्ति की—किनारे से टकराने वाली लहर की तरह एक—झाँकी दिखा देता है। मैं तो समझता हूँ 'एलबम' में जिस प्रकार एक चित्र होता है ठीक वैसा ही एकांकी नाटक का अस्तित्व है। एकांकी नाटक एक तरह से बड़े नाटक से कठिन भी है। जब तक नाटककार की दृष्टि अपने लक्ष्य की ओर तीव्र और एकतान न होगा, वह सफल नाटक रचना नहीं कर सकता।

वस्तु और पात्र

पुराने और नये युग में जो सब से बड़ा भेद किया जा सकता है वह सीमा और असीमका है। हमें मानना होगा कि पुराने युग में खासकर संस्कृत के, हमें लक्षणों के आधार पर चलना पड़ता था। पाठक देखेंगे पहले संस्कृत में नाटकों के इतने भेद केवल वस्तु और पात्रों के आधार पर थे। 'अमुक प्रकार का पात्र, नायक या नायिका अमुक प्रकार के रूपक में हो। अमुक प्रकार की कथा अमुक प्रकार के रूपक में होनी चाहिये आदि लक्षण हमारे पुराने साहित्य के ग्रन्थकारों ने नाटक के सम्बन्ध में बनाये हैं। परन्तु इस समय परिस्थिति और काल की प्रेरणा से वे बन्धन हिन्दी पर नहीं रहे हैं। कवि सम्प्रदाय की तरह नाटक सम्प्रदाय की भी एक प्रकार से उपेक्षा हो गई है। इस का कारण मानव स्वभाव का यथार्थता की ओर बढ़ना है जीवन में न

विष्कम्भक की आवश्यकता है और न सन्धि की। आज कल का कलाकार जैसा देखता है, रूप पाता है उस का हूबहू चित्रण करने में अपनी कला की सफलता समझता है। हाँ, अभिव्यक्ति को वह उग्र ज़रूर बनाना चाहता है। उसे हृदय पर सीधे ढंग से चोट करना अच्छा लग रहा है। एक प्रकार से आज कल्पना और अनुभूति उसके साधन हैं। इस समय समस्त संसार अपनी अपनी समस्या लेकर चल रहा है! देश में छोटे से छोटे स्थान और पदार्थ के लिये संघर्ष हो रहा है। आवश्यकताओं ने मनुष्य को वशीभूत कर लिया है। भूख का व्यापार इतना उग्र हो उठा है कि उसे अपनी तृप्ति के लिये प्राचीन युग के मनुष्य से कहीं अधिक हाथ पाँव मारने पड़ रहे हैं। एक तरह से यों कहना चाहिये कि जीवन का रूप इतना नग्न हो कर मनुष्य के सामने कभी आया ही नहीं था। इस परिस्थिति से, इस यथार्थता से आँख मोड़ना आज कल के कलाकार के लिये असम्भव है। फलतः आज के नायक की वस्तु और पात्र दोनों ही देश व्यापी हैं। हम मानते हैं संध्या के सौन्दर्य में अब भी वही रमणीयता है जो वैदिक काल के ऋषियों न देखी थी, उस में वैसा ही सौन्दर्य है, मेघ में वैसा ही आकर्षण है, नदियों में वैसी ही मस्ती है परन्तु क्या आज कल के कवि के लिये वे बातें उतनी ही आवश्यक हैं? क्या उसे जीवन के उस संघर्ष से मुँह मोड़ लेना चाहिये? आज कल का कवि यही जानकर किसी भी सीमा में अपने को बाँधना नहीं चाहता। इसी तरह नायक के वस्तु और

पात्र की उसके सामने कोई सीमा नहीं रही है। शायद यही समझकर कई लोग आज कल की कविता को कविता नहीं मानते, आज कल के नाटकों को नाटक नहीं मानते। हमें उन से कुछ भी नहीं कहना। यह उनकी इच्छा है। परन्तु उन्हें जानना चाहिये कलाकार श्मशान में एक वृक्ष पर बैठ कर बारहों मास गाने वाली कोयल नहीं है। जिस के सामने महामारी के हज़ारों मुर्दे जल रहे हैं, चीत्कार से आकाश भर गया है, जहाँ क्रान्ति, कलह, ईर्षा, द्वेष, कपट, अविश्वास की कुछ भी परवा किये बिना मनुष्य तथा देश अपनी सत्ता स्थिर रखना चाहते हैं। क्या अपने देश तथा जाति की उत्कृष्टता की पागल भावना के पीछे अपनी ही सम्पूर्ण शक्ति को, ईश्वर के बनाये हुए कहे जाने वाले सर्व श्रेष्ठ मनुष्य की भेंट चढ़ाने को तैय्यार हत्यारे राष्ट्रों के रूप को देखकर भी वह कलाकार उषा के गीत गाता रहे? क्या यह सम्भव है! कोयल भी तो बारहों मास नहीं गाती। जीवन की स्पष्ट और यथार्थ अभिव्यक्ति का नाम कला है। यह तो उसे करना ही होगा। कलाकार का हृदय इतना भावुक और इतना कोमल होता है कि उस पर संसार के ही नहीं व्यक्ति के भी व्यापार का प्रभाव पड़ता है। वह उस 'थर्मामीटर' के समान है जिस पर मानव शरीर की गर्मी का भी प्रभाव पड़ता है। इसी लिये आज के युग में न तो वस्तु की कोई सीमा है न पात्र की।

संवाद नाटक की सीढ़ी है जिस पर चढ़कर पात्र अपने लक्ष्य तक पहुँचता है। एक तरह से यों कहना चाहिये कि नाटक की सफलता उस की संवाद-प्रौढ़ता है। और एकांकी नाटक में तो उस का रूप और भी स्पष्ट है। संसार के श्रेष्ठ नाटककार बर्नार्डशा का संवाद—डायलाग—इतना तर्क-पूर्ण और प्रभाव-शाली होता है कि पाठक मुग्ध हो जाता है और यंत्र की तरह अपनी गति-विधि को भूल कर तन्मय हो जाता है। एकांकी नाटक में संवाद की उपयोगिता ही श्रेष्ठ है। एलफ्रेड सुतरो का A marriage has been arranged एकांकी नाटक इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। बाल रूम से थोड़ी देर के लिये सुस्ताने निकली एक भद्रकुमारी की एक बेढंगे नायक से बात चीत होती है। कुमारी पहले उसे घृणा की दृष्टि से देखती है और उसे संसार का अधम पुरुष समझती है, परन्तु उसकी संवाद-प्रौढ़ता से प्रभावित होकर वह एकदम आत्म-समर्पण कर देती है। एकांकी नाटक में वातावरण को तो इतना स्थान मिलता नहीं कि उसका प्रभाव पड़े। वहाँ तो लेखक के पास केवल एक ही बल है और वह है संवाद। एकांकी नाटक में कथोपकथन बिल्कुल सीधा, स्वाभाविक और लक्ष्य को 'हिट' करने वाला होना चाहिये। स्वाभाविकता वस्तुतः साहित्य की जान है और नाटक में तो उसका स्थान बहुत ऊंचा है। वहां तो पात्र, घटना, वस्तु, कथोपकथन सब में स्वाभाविकता होना ज़रूरी है। एकांकी की दृष्टि से वे ही नाटक अधिक सफल होते हैं जो एक दृश्य के हों। यह त्रुटि प्रायः उन नाटकों में रह जाती है, जिनमें ज़रा बात चीत के बाद सीन बदलने की घोषणा कर दी जाती है।

इतनी शीघ्रता से न तो दृश्य ही बदले जा सकते हैं और न वे देखने पर सफल ही होते हैं।

हिन्दी के कुछ एकांकी नाटक

यह हमारा सौभाग्य है कि हिन्दी में भी एकांकी नाटकों की रचना हो रही है। कहना न होगा ये एकांकी नाटक अभी अपनी प्रौढ़ता को नहीं पहुँच पाये हैं और स्टेज के अभाव से इन की त्रुटियाँ भी दूर नहीं हो सकी हैं ! इतने पर भी हमें सन्तोष है इन नाटकों का हिन्दी साहित्य में अपना एक विशेष स्थान है। अब तक जिन लोगों ने एकांकी नाटकों का सृजन किया है उनमें से कुछ एक के नाम ये हैं:—सर्वश्री सुदर्शन, रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर प्रसाद, गोविन्दवल्लभ पन्त, भगवती चरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, गणेश प्रसाद द्विवेदी और मेरे। इन नाटककारों का भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल और शुभ देख पड़ता है। इन में रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर प्रसाद और मेरे नाटकों के संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। इस समय हिन्दी साहित्य में जिस शैली से एकांकी नाटक लिखे जा रहे हैं उन्हें देखते हुए यह दूर नहीं मालूम होता कि हिन्दी के एकांकी नाटकों का भविष्य उज्ज्वल है। हमने यहाँ उन्हीं नाटकों को संग्रह रूप में दिया है जो अश्लील तथा शृंगार से रहित और बालकों की रुचि के अनुकूल और उपादेय हों।

अन्त में मैं उन नाटककारों का आभारी हूँ जिन्होंने मेरी प्रार्थना पर अपने अमूल्य नाटकों को इस संग्रह में रखने की स्वीकृति दी है।

उदयशंकर भट्ट

दूसरे संस्करण की भूमिका

मुझे प्रसन्नता है कि हिन्दी में इस संग्रह का काफ़ी आदर हुआ है। पत्र, पत्रिकाओं एवं विश्वविद्यालयों ने इसे सम्मति-प्रदान तथा पाठ्य पुस्तकों में निर्धारित करके सम्पादक और प्रकाशक दोनों का गौरव बढ़ाया है। एतदर्थ धन्यवाद।

२० जून, १६४०.
५ कृष्णा गली,
लाहौर।

सम्पादक

Please [illegible] to
[illegible]

श्री सुदर्शन

श्री सुदर्शन १८४६ में सियालकोट में उत्पन्न हुए। उन के पिता पंडित गुरांदित्तामल शिमला के गवर्नमैंट प्रेस में काम करते थे। बचपन से ही आप को कहानियाँ लिखने का शौक था। हिन्दी में सबसे पहली कहानी आप ने १६२० में सरस्वती में लिखी। अब तक हिन्दी में आप की लगभग १२ पुस्तकें निकल चुकी हैं। पंजाब सरकार आपकी दो पुस्तकों पर इनाम भी दे चुकी है।

कहानियों के साथ साथ आपने नाटक भी लिखे हैं।

श्री सुदर्शन हिन्दी में अपनी भिन्न शैली के कहानी लेखक हैं। इन्होंने कहानी तथा नाटकों में स्पष्टता एवं व्यंजना को प्रौढ स्थान दिया है। सरल भाषा, सरस वाक्यावली तथा उद्देश्य के प्रति तीक्ष्णता इन की भाषा का रूप है। इन के चरित्र व्यावहारिक एवं संवेदन शील होते हैं जो पाठक के ऊपर अपनी छाप छोड़ जाते हैं। इनकी विवेचना स्वाभाविक एवं प्रगति युक्त होती है।

प्रस्तुतः एकांकी 'राजपूत की हार' जातिगर्व पर होने वाले विरोधी घात प्रतिघातों का एक सुन्दर समन्वय है, जिस में मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय का युद्ध है, तर्क की अपेक्षा संस्कारों का, कल्पना का और रोमान्स का; पात्रों की संस्कृति के अनुरूप विचार, कल्पना और सहज बुद्धि ही इनका रचना चातुर्य है।

खेद है श्री सुदर्शन ने इस तरह की चीज़ें कम लिखी हैं पर जो कुछ है वे अपने रूप में पूर्ण एवं सर्वांग हैं।

(पात्र)

महामाया—जसवन्तसिंह की रानी ।

जसवन्तसिंह—जोधपुर के राणा साहब ।

कुलीना—जसवन्तसिंह की माता ।

अचलसिंह—नगररक्षक ।

राजपूत की हार

पहला दृश्य

स्थान—जोधपुर के क़िले का एक कमरा

समय—दिन के दस बजे

(महामाया और कुलीना बातें कर रही हैं)

महामाया—

नहीं, मा ! नहीं, मेरा दिल अभी तक अशान्त है। मैं कुछ नहीं कर सकती।

कुलीना—

आठ दिन बीत गए हैं, परन्तु तेरा मन अभी तक अशान्त है। यह तेरा पागलपन है।

महामाया—

ठीक है, मैं ही पागल हूँ। (ठंडी साँस ले कर) वह तुम्हारा बेटा है। तुम उस की मा हो। तुम उस से क्या कह सकती हो। और मैं पराए घर की बेटी हूँ। मैं ही पागल हूँ।

कुलीना—

(प्यार से)—मेरी बेटी ! जो कुछ भी हो, वह तेरा पति है।

महामाया—

मगर वह कायर है। उस ने दुश्मन को पीठ दिखाई है। वह प्राण बचाने के लिए रणक्षेत्र से भागा है। मा ? ज़रा सोचो, लोग अपने-अपने घर में हमारे बारे में क्या कहते होंगे ! मेरी सखियाँ, जो मेरा भाग्य सराहती थीं, आज मेरे दुर्भाग्य पर शोक कर रही होंगी।

कुलीना—

महामाया ! मेरी बच्ची !

महामाया—

(भर्राई हुई आवाज़ में)—अगर वह राजपूत था, अगर उस ने वीर माता का दूध पिया था, अगर वह राजपूत सिंहिनी की गोद में पलकर जवान हुआ था, तो उसे चाहिये था, रण-भूमि में डट जाता, मृत्यु के भय को पाँव तले मसल डालता, और संसार को दिखा देता कि राजपूत का बच्चा मृत्यु और जीवन दोनों को समान समझता है। मा ! मैं समझती थी, मेरा पति सूरमा है। मेरा ख्याल था, वह आदर के जीवन और आदर की मृत्यु दोनों की व्यवस्था जानता है, मगर (दीर्घ निश्वास लेकर) हाय शोक ! यह मेरी भूल थी—वह हारकर भी, अपनी और दूसरों की दृष्टि में अपमानित होकर भी, ज़िन्दा रहना चाहता है !

कुलीना—

मेरी बच्ची ! जोश में न आ। इससे कुछ प्राप्ति न होगी। आज्ञा दे, कि क़िले के द्वार खोल दिए जाएँ। आठ दिन द्वार पर पड़े रहना साधारण दण्ड नहीं है।

महामाया—

साधारण दण्ड नहीं है ! मा, राजपूत के बेटे के लिए हार कर भाग आना ऐसा पाप है, जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं। यदि मेरी आँखें यह दुर्दिन देखने से पूर्व सदा के लिए बन्द हो जातीं, तो मैं इसे अपना सौभाग्य समझती।

कुलीना—

धीरज धर, मेरी बच्ची ! धीरज धर। तेरी जीभ से ऐसे शब्द सुनकर मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हुआ जाता है।

महामाया—

और अपने बेटे की वीर-घटना सुनकर तो तुम्हारी छाती हर्ष से फूल उठी होगी, क्यों ?

कुलीना—

(आह भरकर)—यह तू कहती है मेरी बच्ची ! तू, जो मुझे भली भाँति जानती है। आज तू मुझे यह ताने दे रही है।

महामाया—

(कुलीना के कन्धे पर सिर रखकर)—मा ! क्या तुझे मेरे दुर्भाग्य पर दया नहीं आती ? राजपूत मा की कोख से जन्म लिया,

राजपूतों के वीर-परिवार में ब्याही गई, और फिर भी मुझे भीरु, कायर, जीवन का लोभी पति मिला ! जहाँ शूरवीर हर्ष से पागल हो उठता है, जहाँ सच्चे राजपूतों को आगे पीछे का ध्यान नहीं रहता, उसने वहाँ भी अपने प्राणों को प्यारा समझा और भागकर घर में आश्रय लेने आया है। मा ! क्या सचमुच वह तेरा बेटा है? नहीं, मालूम होता है, वह तेरा बेटा नहीं है। तूने किसी का पुत्र लेकर पाल लिया है। तू सच्ची राजपूतनी है। तेरे दूध में यह निर्लज्जता नहीं हो सकती। वह तेरा बेटा नहीं है। वह तेरा बेटा नहीं हो सकता।

कुलीना—

मेरी बच्ची ! चाँद और सूरज भी ग्रहण के समय काले हो जाते हैं।

महामाया—

(चौंक कर)—मा ! मुझे एक और ख्याल आया है। (सोचती है)।

कुलीना—

(अनमनीसी)—क्या ?

महामाया—

(रुक-रुककर)—शायद यह राणा न हों कोई छलिया उन के रूप में हमें धोखा देने आया हो। वह ऐसे कायर न थे। उनकी रगों में न हारनेवाली शक्ति, उन के लहू में न बुझने

वाली अग्नि, उनकी भुजाओं में न झुकने वाली ताक़त थी। मैंने उनको निकट होकर देखा है, मैंने उनका दिल पढ़ा है—वे सूरमा थे। उनको आन प्यारी थी, उनको जान प्यारी न थी।

कुलीना—

(आँसू पोंछकर)—मेरा भी यही खयाल था, मेरी बच्ची !

महामाया—

एक दिन कहते थे, राजपूत की कसौटी मौत है। मैंने हँसकर पूछा, अगर आप किसी दिन युद्ध-क्षेत्र से हारकर भाग आएँ, तो मुझे क्या करना उचित है? मा ! जानती हो, उन्होंने मेरे इस अपमानसूचक प्रश्न का क्या उत्तर दिया? अगर तुम समीप होतीं तो अपने पुत्र को गले से लगा लेतीं। उन्होंने कहा, महामाया ! अगर कभी मेरे जीवन में ऐसा अशुभ समय आ जाय, तो अपनी कटार मेरी छाती में भोंक देना, यह मुझ पर सबसे बड़ा उपकार होगा।

कुलीना—

उस समय वह सच्चे राजपूत के समान बोल रहा था।

महामाया—

एक दिन कहते थे, युद्ध-क्षेत्र में हार जाना लज्जा की बात नहीं, लज्जा की बात यह है कि वीर पुरुष हारकर भी जीता रहे। जो वीरात्मा है, वह हार सकता है, हारकर जीता नहीं

रह सकता। अपनी मा, बहन, स्त्री के सामने सिर नहीं उठा सकता। उसके लिए पराजय और मृत्यु एक ही वस्तु के दो नाम हैं।

कुलीना—

मेरा बेटा सचमुच बड़ा बहादुर था। न जाने आज उसे क्या हो गया?

महामाया—

(उन्मत्त भाव से)—कुछ नहीं हुआ मा! वे आज भी उसी तरह बहादुर हैं। वे लड़ते-लड़ते वीर-गति को प्राप्त हो चुके हैं, और यह नराधम, नरक का कीड़ा, जो हमारे द्वार पर पड़ा है, उनके कपड़े चुराकर और डाकुओं को लेकर हमें धोखा देने आया है।

कुलीना—

(आकाश की ओर देखकर) काश, तुम्हारा खयाल ठीक होता!

महामाया—

(आश्चर्य से)—ठीक होता! तो क्या तुम्हें भी सन्देह है? क्या तुम भी उनको इतना पतित समझती हो? नहीं मा, नहीं। वे युद्ध में मारे जा चुके हैं, मैं अब विधवा हो चुकी हूँ। नौकरों से कहिये, चिता चुन दें, मैं उनका नाम लेते-लेते सती हो जाऊँगी।

कुलीना—

(महामाया को गले से लिपटाकर रोते हुए)—मेरी बच्ची ! तुझे क्या हो गया है ?

महामाया—

(सुनी अनसुनी करके)—वह स्वर्ग में मेरी बाट जोह रहे होंगे। झुक-झुक कर नीचे की तरफ देखते होंगे। मेरे बिना घबरा रहे होंगे। आज्ञा दो मा ! (हाथ बाँधकर) वे क्षात्र-धर्म का पालन कर चुके, अब मेरे नारी धर्म पालन करने की बारी है (ऊँची आवाज़ से) मालती ! वीरा !! शक्ति !!!

(तीनों सहेलियों का सिर झुकाए हुए प्रवेश)

महामाया—

(बिना उनकी तरफ़ देखे धीरे धीरे)—चन्दन की लकड़ियाँ मँगवा कर चिता चुन दो......मेरे सारे बढ़िया कपड़े, अनमोल आभूषण ले आओ......मैं उनसे मिलने जा रही हूँ। मैं आज आग के उड़न-खटोले पर सवार होऊँगी।

(सहेलियाँ पहले घबरा जाती हैं, फिर एक दूसरी की तरफ़ देखती हैं। इसके बाद कुलीना की तरफ़ देखती हैं)

कुलीना—

पागल हो गई है !

महामाया—

(चौंक कर)—कौन पागल है ? (फिर स्वयं ही उत्तर देती

है ।) वही, जो मेरे पति के भेस में मुझे ठगने के लिए आया है । (कुछ देर चुप रहने के बाद) सचमुच वह पागल है, जो समझता है कि मैं भेस और शक्ल सूरत से धोखा खा जाऊँगी । यह उसकी भूल है। मैंने पहचान लिया, यह कोई और आदमी है, यह महाराणा जी नहीं हैं। (झूमते हुए) यह महाराणा जी नहीं हैं किसी से पूछ लो।

कुलीना—

मेरी बेटी ! मेरी प्यारी बच्ची !!

महामाया—

(कटार निकाल कर) अच्छा, पहले चलकर उसे उसी की कसौटी पर परख लूँ । मालती ! वीरा !! शक्ति !!! जाओ जाकर दुर्गरक्षक से कहो, दरवाज़ा खोल दे, मैं यह कटार उसकी छाती में भोंक दूँगी । अगर राणा जी होंगे, मेरे कर्तव्य-पालन की प्रशंसा करेंगे । अगर कोई लम्पट होगा, कटार देख कर चिल्लाता हुआ भाग जायगा । मालती ! वीरा !! शक्ति !!!

शक्ति—

महारानी जी ! क्या आज्ञा है ?

महामाया—

चिता तैयार हुई या नहीं ? राजपुरोहित आया या नहीं ? मेरे आभूषण कहाँ हैं ? तुम विलम्ब कर रही हो, राणा जी खफ़ा हो रहे होंगे ।

शक्ति—

(कुलीना से)—राजमाता ! आपने देखा, इनको क्या हो गया ?

कुलीना—

इनको पकड़ कर शयनागार में ले चलो, और वैद्यराज से कहो, अभी आकर औषधि दें ! मैं अभी आती हूँ ।

(सहेलियों का महामाया को सहारा देकर ले जाना और अचलसिंह का प्रवेश)

कुलीना—

अचलसिंह ! कोई नवीन समाचार है ?

अचलसिंह—

रात चार घायल सिपाही और मर गए । महाराणा के ज़ख्म अभी तक नहीं भरे ।

कुलीना—

महाराणा क्या महामाया से बहुत नाराज़ है ?

अचलसिंह—

नाराज़ नहीं उदास हैं । उनको अपने ऊपर क्रोध है । कल कई घंटे रोते रहे हैं, उनको सारी रात नींद नहीं आई । अगर आज्ञा हो, तो क़िले का दरवाज़ा खोल दिया जाय । आख़िर कब तक बाहर पड़े रहेंगे ?

कुलीना—

मैं क्या कर सकती हूँ, महामाया नहीं मानती।

अचलसिंह—

आप जो चाहें, कर सकती हैं। क़िले में कौन है, जो आपकी आज्ञा न माने।

कुलीना—

महारानी महामाया है, मैं कुछ नहीं कर सकती।

अचलसिंह—

आप राजमाता हैं, आप सब कुछ कर सकती हैं।

कुलीना—

राजमाता बीते हुए कलकी रानी है। आज की रानी महामाया है, उसके सम्मुख मैं भी सिर नहीं उठा सकती।

अचलसिंह--

मगर उन्होंने कभी आपकी किसी बात का विरोध नहीं किया।

कुलीना—

यह उसकी कृपा है।

अचलसिंह—

सामन्तों की सम्मति है, आप उनको विवश करके दरवाज़ा खुलवा दें।

कुलीना—

यह मेरी भूल होगी।

अचलसिंह

तो फिर क्या आज्ञा है ?

कुलीना—

(सोच कर)—महामाया को होश आ जाए, तो मैं उससे पूछूँगी। इस समय तुम जाओ, दो-तीन घंटे बाद आना।

———

दूसरा दृश्य

स्थान—उसी क़िले का दूसरा कमरा

समय—दोपहर

(महामाया एक पलंग पर लेटी है; पास सहेलियाँ शक्ति, वीरा, मालती बैठी हैं। सिर की ओर दवा की शीशियाँ रखी हैं। महामाया चुपचाप छतकी तरफ देख रही है। उसके कपोलों पर आँसू बह रहे हैं। सहेलियाँ रूमाल से आँसू पोंछ रही हैं।)

शक्ति—

महारानी ! रोने से क्या हो जाएगा ? धीरज धरिये। यह साधारण बात है।

महामाया—

(ठंडी आह भरकर)—शक्ति ! यह साधारण बात नहीं है। मुझसे मेरा गौरव छिन गया मेरे हृदय में उनके लिए जो श्रद्धा

थी वह जाती रही। मैं अपनी दृष्टि में आप ही गिर गई हूँ, यह साधारण बात नहीं है!

शक्ति—

मगर महारानी! युद्ध में हार-जीत दोनों की सम्भावना है। किसी न किसी को तो हारना पड़ेगा। दोनों नहीं जीत सकते।

महामाया—

हार की सम्भावना है, मगर हार कर मा की गोद में भाग आने की सम्भावना नहीं है, और वह भी एक राजपूत के लिए। ओह शक्ति! तुम नहीं जानतीं, मेरा रुधिर जल रहा है। जी चाहता है, क़िले की सब स्त्रियाँ चलें और दीवार पर से तीर बरसा-बरसा कर उन भगोड़ों का काम तमाम कर दें। उनको पता लग जाय कि जब राजपूत युद्ध में हार कर घर को लौटते हैं, तो उनकी स्त्रियाँ, उनकी बहनें, उनकी माताएँ उनका स्वागत किस तरह करती हैं। जी चाहता है, हम उनको बता दें कि ऐ नामर्दो! तुमने अपना कर्तव्य भुला दिया है, मगर तुम्हारे घर की देवियों में यह भाव अभी तक ज़िन्दा है। (जोश से उठ कर बैठ जाती है।) जी चाहता है, हम उनको बता दें कि जो राजपूत युद्ध से हार कर घर की तरफ भागता है, उसके घर की स्त्रियाँ उसकी गर्दन काटने के लिए, उसके घर के दरवाज़े पर नंगी तलवार लेकर खड़ी हो जाती हैं।

शक्ति—

(लिटाते हुए)—लेट जाइये ! आप के लिए यह जोश हानिकारक है ।

महामाया—

परन्तु उस कायर के लिए हानिकारक नहीं है । (थोड़ी देर के बाद) वीरा ! क्या दुर्गरक्षक ने दरवाज़ा खोल दिया ?

वीरा—

आप की आज्ञा का उल्लंघन कौन कर सकता है ?

महामाया—

यह मेरी आज्ञा न थी, मा जी का आदेश था, वर्ना मैं उन को दरवाजा कभी न खोलती । (एकाएक चिल्ला कर) वीरा ! शक्ति !! मालती !!! उठो, दौड़ कर जाओ । दुर्गरक्षक से कहो, दरवाज़ा न खोलें, मैं ने अपनी सम्मति बदल दी है ।

मालती—

दरवाज़ा खुल चुका, वे कभी के अन्दर आ चुके ।

महामाया—

अब भी जाओ, मेरा मुँह क्या देख रही हो ? (मिन्नत से) अब भी जाओ, और उन सब भगोड़ों को धक्के मार-मार कर क़िले से बाहर निकाल दो, वर्ना इस पवित्र दुर्ग की पावन-भूमि अपवित्र हो जाएगी ।

(एकाएक कुलीना का प्रवेश)

कुलीना—

नहीं मेरी बहादुर बच्ची ! तेरे क़िले के अन्दर आकर उनकी सोई हुई आत्मा जाग उठेगी ।

महामाया—

मा ! तू ने क्या कहा ? (उठ कर सास के गले से लिपट जाती है ।) फिर कहो, मा ! फिर कहो, उन की सोई हुई आत्मा जाग उठेगी । मैं इस एक क्षण के लिए अपना सर्वस्व लुटा देने के लिये तैयार हूँ । मैं अपना राज दे सकती हूँ, मैं अपना जीवन दे सकती हूँ, मैं अपने जीवन को जीवन के उल्लास और प्रकाश से खाली कर सकती हूँ । किसी तरह उन की आत्मा जाग उठे । वे फिर से वैसे ही वीर, वैसे ही निर्भय बन जाएं । मैं और कुछ नहीं चाहती ।

कुलीना—

तुम मुझ पर विश्वास करो, मैं उसको सचेत कर दूँगी ।

महामाया—

मैं आपके कहने पर मरने को तैयार हूँ ।

कुलीना—

(बात का रुख बदलकर)—तुमने दवा पी या नहीं ?

महामाया—

(सिर झुकाकर)—अभी नहीं ।

कुलीना—

मालती ! दवा दो, यह पगली आत्म-हत्या करने पर तुली हुई है ।

(मालती दवा पिला देती है)

अब जसवन्तसिंह आ रहा है, उसका अपमान न करना । थका हुआ है, घायल है, कई रातों का जागा हुआ है । हार कर आया है, क्रोध में होगा । दरवाज़े पर पड़ा रहा है, लज्जित होगा । तुम्हारे कटु वचनों से और भी बिगड़ जायगा । तुम्हारी दो मीठी बातों से उसे सारे कष्ट भूल जाएँगे ।

महामाया—

(बेबसी से)—मा ! मुझे क़त्ल कर दो, मगर यह न कहो । मुझ से यह न होगा । मेरे हृदय में घृणा की आग जल रही है

कुलीना—

आज सायंकाल से पहले-पहले वह फिर लड़ने को चला जायगा । (महामाया के सिर पर स्नेह से हाथ फेरकर) वह स्वभाव से योद्धा है, इस क्षणिक जीवन में प्रेम का भाव ज्यादा देर तक स्थिर नहीं रह सकता ।

महामाया—

(आशापूर्ण स्वर से)—आज सायंकाल से पहले–पहले फिर लड़ने को चले जायँगे, यह कौन कहता है ?

कुलीना—

मैं।

महामाया—

आप इन शब्दों का अर्थ समझती हैं ?

कुलीना—

मैंने आज तक कभी झूठ नहीं बोला।

महामाया—

(हाथ बाँध कर)—मेरा अपराध क्षमा हो, मेरा तात्पर्य यह कभी न था।

कुलीना—

चलो लड़कियो ! यह कमरा खाली कर दो । (सहेलियों का चला जाना।) ले मेरी बच्ची ! वह आ रहा है, उस से अच्छी तरह पेश आना, और कहना—रसोईघर में चलिये, मेरी श्रद्धा है, अपने हाथ से हलवा बनाऊँ और आप को अपने सामने बैठा कर खिलाऊँ।

महामाया—

मैं हलवा बना कर खिलाऊँगी ! नहीं यह मुझ से न होगा, मा !

कुलीना—

यह उस के मानसिक रोग की अमोघ औषधि है।

महामाया—

(आश्चर्य से)—हलवा !

कुलीना—

यह हलवा उस के गले के नीचे न उतरेगा । वह इसे केवल एक बार देखेगा और घोड़े पर चढ़ कर क़िले से बाहर निकल जाएगा । मैं उस भूले हुए शेर-बच्चे को शीशे के सामने लेजा कर उसे मुँह दिखा देना चाहती हूँ ।

महामाया—

फिर इस हलवे का क्या होगा ?

कुलीना—

पुत्र के पुनरुत्थान के उपलक्ष में क़िले की स्त्रियों में बाँटा जायगा ।

(कुलीना हँस कर चली जाती है ।)

महामाया—

भगवान् उन की आँखें खोल दे, नहीं मेरा जीवन मेरे लिए असह्य हो जाएगा ।

(महाराणा जसवन्तसिंह धीरे-धीरे प्रवेश करते हैं । उन के सिर और भुजाओं पर पट्टियाँ बँधी हैं, मुँह का रंग पीला है, आँखों में लज्जा है । पति और पत्नी दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं और चुप रहते हैं । इस के बाद राणा पलंग पर बैठ जाते हैं, महामाया पास आ जाती है ।)

जसवन्तसिंह—

(ज़मीन की ओर देखते हुए)—महामाया ! यह पराजय जीवन भर न भूलूँगा ।

महामाया—

(तीखी दृष्टि से देख कर)—खैर, यह साधारण बात है। प्राण बच गये, यही बड़ी बात है ! प्राण-रक्षा राजपूत का सर्व प्रथम धर्म है !

जसवन्तसिंह—

मैं ने अपनी तरफ़ से पूरा-पूरा यत्न किया, परन्तु मेरी कोई पेश न गई ।

महामाया—

सत्य है, असहाय मनुष्य क्या कर सकता है !

जसवन्तसिंह—

(महामाया की बात को न समझ कर ज़रा साहस से)—मनुष्य प्रारब्ध के हाथ का खिलौना है । वह उसे जिधर चाहती है, उठा कर फेंक देती है ।

महामाया—

मनुष्य की इस से अच्छी परिभाषा मैं ने आज तक नहीं सुनी। कहिये, ज़ख्मों का क्या हाल है ?

जसवन्तसिंह—

इस से तुम्हें क्या ? तुम ने अपनी तरफ़ से मेरा अपमान करने

में कोई कोर-कसर नहीं उठा रखी ।

महामाया—

आप ने भूल की, आप को आगे न बढ़ना चाहिए था। लड़ने के लिए सेना होती है, सेनापति को पीछे रहना चाहिए। उस का संकट में पड़ना उस की मूर्खता है।

जसवन्तसिंह—

(क्रोध से)—मालूम होता है, तुम मेरी हँसी उड़ा रही हो।

महामाया—

राम, राम ! मुझ में यह साहस कहाँ कि आप जैसे विश्वविजयी की हँसी उड़ा सकूँ।

जसवन्तसिंह—

तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मैं तुम्हारा पति हूँ और जोधपुर का महाराणा हूँ।

महामाया—

(तिलमिला कर)—आप को भी मालूम होना चाहिए कि मैं वीर-पिता की बेटी हूँ, और मुझे निर्लज्जता-पूर्ण जीवन से घृणा है।

जसवन्तसिंह—

तो क्या तुम चाहती हो कि मैं वहाँ मर जाता ?

महामाया—

यह मेरे और मेरे कुल के लिए गौरव की बात होती।

जसवन्तसिंह—

मुझे यह पता न था कि तुम्हें विजय इतनी प्यारी है।

महामाया—

मुझे विजय नहीं, आन प्यारी है। आन के सामने सारे संसार को तुच्छ समझती हूँ।

जसवन्तसिंह—

घर में बैठी बातें करती हो, एक बार युद्ध में चली जाओ, तो होश ठिकाने आ जायें।

महामाया—

पहले पुरुष चूड़ियाँ पहन लें, फिर स्त्रियाँ घर में रह जायँ, तो नाक कटा दूँ।

(कुलीना का हँसते हुए प्रवेश।)

कुलीना—

(महामाया को आँख से इशारा कर के)—क्यों बेटी! आते ही वाग्युद्ध प्रारम्भ कर दिया। तुम बड़ी मूर्खा हो। उठो, रसोईघर में चल कर अपने हाथ से हलवा बनाओ। मेरा बेटा समर से जीता लौटा है। आज मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ।

जसवन्तसिंह—

मा! तुमने सुना, यह स्त्री अभी-अभी क्या कह रही थी? जी चाहता है......

कुलीना—

बेटा ! शान्त हो । यह तो गँवार है । तू चल कर रसोई में बैठ ।

जसवन्तसिंह—

नहीं मा, मैं इसके साथ वहाँ कभी न जाऊँगा। उफ् ! कितनी हृदयहीन है, कहती है .....

महामाया—

(तड़प कर)—क्या कहती हूँ ?......

कुलीना—

(बात काट कर)—चुप बहू ! मैं आज के दिन तुम्हारा यह झगड़ा नहीं देख सकती । उठो, चल कर रसोई में बैठो, मगर सावधान ! कोई लड़ाई झगड़े की बात न करे । आज खुशी का दिन है ।

—:o:—

तीसरा दृश्य

स्थान—उसी महल का रसोईघर

समय—दोपहर

(महामाया हलवा बना रही है । महाराणा किसी गहरी चिन्ता में निमग्न सामने बैठे हैं । महामाया उनकी तरफ देखती है, और उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगती हैं ।

साफ़ मालूम होता है कि उसके हृदय में उथल-पुथल मच रही है।)

महाराणा—

सिपाहियों की मरहम-पट्टी हो रही है क्या ?

महामाया—

(रुखाई से)—हो रही होगी ? मैं ने आज्ञा दे रखी है।

महाराणा—

(थोड़ी देर चुप रहने के बाद)—देखता हूँ, तुम्हारा क्रोध अभी तक नहीं उतरा।

महामाया—

(भुने हुए आटे में चीनी की चाशनी डालते हुए)—उतरे या न उतरे, इस की आप को क्या परवाह है ?

महाराणा—

तुम्हारे क्रोध की मुझे परवाह नहीं, तो और किसे है ? मैंने अपनी अनुपस्थिति में क़िले का सारा भार तुम्हारे सुपुर्द कर दिया था। तुम ने आदेश किया, हम द्वार पर रोक दिये गये। यह मेरा घोर अपमान था, मगर मैंने तुम से एक शब्द भी नहीं कहा; क्योंकि मैं तुम्हारी नेकनीयती स्वीकार करता हूँ। तुम फिर भी कहती हो, मुझे तुम्हारी परवाह नहीं ! (हँसकर) चलो, अब जाने दो। जो हो गया, सो हो गया। और यह कोई ऐसी बात नहीं, जिस के लिए...

महामाया—

(कढ़ाई में कलछी चलाती हुई)—आप के लिए यह साधारण बात होगी । मेरे लिए यह दिन मेरे जीवन का सब से बुरा दिन है ।

महाराणा—

(तेज़ हो कर)—तो आखिर तुम क्या चाहती थीं ? मैं मर जाता, तो तुम खुश हो जातीं ?

महामाया—

कायरों के लिए मरना बड़ा कठिन है । वह मौत को देख कर दूर ही से भाग निकलते हैं ।

(चूल्हे में लकड़ी डालती है)

महाराणा—

महामाया ! तुम्हारा एक-एक शब्द विष में बुझा हुआ तीर है ।

महामाया—

युद्ध से भाग कर आये हुए लोगों को मीठे वचन सुनने का कोई अधिकार नहीं ।

(फिर हलवा बनाने में लीन हो जाती है)

महाराणा—

महामाया ! महामाया !

महामाया—

(कपड़े से कढ़ाई के दोनों सिरे पकड़ कर)—मीठे वचन नहीं, तो क्या हुआ, मीठा हलवा तो है! यह पराजय का पुरस्कार है, पेट भर कर खाइये। (कढ़ाई नीचे उतार कर पति के मुँह की तरफ़ देखती है) एक दिन वह था, जब इज्ज़त की बाज़ी हार कर राजपूत किसी को मुँह न दिखा सकता था। आज समय कितना बदल चुका है। माता प्रसन्न होती है, स्त्री हलवा बनाती है और भागा हुआ पति रसोई में बैठ कर मीठी-मीठी बातें सुनना चाहता है! उसे यह बात भूल गई है कि युद्ध के अवसर पर विलासिता की बातें करना देश और जाति के लिए महान् पाप है।

(कलछी लेने के लिए इधर-उधर देखती है)

महाराणा—

मैं चाहता हूँ, तुम पुरुष होतीं।

महामाया—

मैं चाहती हूँ, आप स्त्री होते।

(कढ़ाई में ज़ोर-ज़ोर से कलछी चलाती है, इस की आवाज़ सुन कर कुलीना घबराई हुई प्रवेश करती।)

कुलीना—

महामाया! यह किस चीज़ की आवाज़ है—यह तुम क्या कर रही हो?

महामाया—

(आश्चर्य से)—कढ़ाई में कलछी चला रही हूँ, मा जी !

कुलीना—

अरी बेटी ! कलछी बाहर निकाल, नहीं अन्धेर हो जाएगा।

महामाया—

(और भी चकित हो कर)—मा ! इस से क्या अन्धेर हो जाएगा, मैं कुछ भी नहीं समझी।

(महामाया थाल में हलवा डाल देती है)

कुलीना—

काहे को समझोगी ? जैसे तुम अभी दूध पीती बच्ची हो, जैसे कुछ जानती ही नहीं। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि लोहे से लोहा बजते देख कर मेरा बेटा मेरी गोद में छिपने के लिए यहां भाग कर आया है। क्या तुम उसे यहाँ से भी भगाना चाहती हो ? बेटी ! अब वह कहां जायगा, यहाँ से भाग कर उसे आश्रय पाने को स्थान कहाँ मिलेगा—परमेश्वर के लिए यह लोहे की कलछी बाहर फेंक दो। कहीं ऐसा न हो, वह फिर लोहे की कढ़ाई से टकरा जाय, और मेरा बेटा डर कर यहाँ से भी भाग निकले; फिर मैं क्या करूँगी ?

(महामाया का मुँह चमकने लगता है, मगर वह अपनी खुशी छिपाती है, और हलवे से थाल भर कर पति के सामनें रख देती है। महाराणा कुछ देर चुप रहते हैं, इसके

बादथाल को परे सरका देते हैं और जोश
से तनकर खड़े हो जाते हैं।)

महाराणा—

बस कर, मा ! बस कर। तू ने मेरी आँखें खोल दी हैं, तू ने मुझे जगा दिया है, तू ने मुझे अँधेरे से निकाल कर ज्योति और जीवन के पथ पर डाल दिया है। कितनी लज्जा और शोक की बात है कि राजपूत का बच्चा पराजित होकर भाग आये। भगवान जाने, मुझे क्या हो गया था। मुझे वहीं कट मर जाना चाहिए था। परन्तु—

(महामाया पति की तरफ़ श्रद्धापूर्ण प्रेम से देखती है।)

तुम्हारा कहा-सुना व्यर्थ नहीं गया। मैं अपनी कायरता के लिए तुम से क्षमा मांगता हूं।

कुलीना—

बेटा ! तू अब फिर वही निर्भय, युद्धवीर, साहसी जसवन्तसिंह है, जिस ने मेरा दूध पिया था, जिस ने मेरे कुल का नाम उज्ज्वल करने का व्रत लिया था, जिस के मुँह की ओर देख कर मेरी मुरझाई हुई आशाएँ हरी हो जाती हैं। महामाया खुश हो, तेरा स्वामी अपनी पराजय के काले दाग़ को मिटाने के लिए खड़ा हो गया है।

महामाया—

यह सब आप ही की कृपा है।

महाराणा--

मा ! मुझे तुम पर भी गर्व है, और इस पर भी गर्व है। तुम दोनों ने मिल कर मेरी आँखें खोल दी हैं। हमारी आने वाली सन्तान यह सुन कर खुशी से पागल हो जाएगी कि उन का एक पूर्वज पराजित हो कर घर आया, तो उसकी पत्नी ने उसे घर के अन्दर आने की आज्ञा न दी। राष्ट्रीय गौरव और अभिमान का ऐसा उज्ज्वल, ऐसा ओजमय दृष्टान्त मानव जाति के इतिहास में किसी ने कम ही पढ़ा होगा। इससे भारतवर्ष को अपना सिर ऊँचा उठाने का अवसर मिलेगा। यह मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे ऐसी धर्मपरायण स्त्री मिली, जिस को मेरी मर्य्यादा मेरे प्राणों से भी प्यारी है।

महामाया—

(सिर झुका कर धीरे से)—मा ! इन से कहो, मेरा अपराध क्षमा कर दें।

महाराणा—

तेरा अपराध हमारे कुल का सब से बड़ा गौरव है। (मा की तरफ़ देख कर) मगर मा ! मैं राजपूत हूँ, और राजपूत इतना आत्मगौरवरहित कभी नहीं होता, मुझे बता, मेरी इस कायरता का मूल कारण क्या है ?

कुलीना—

यह तेरा नहीं, मेरा दोष है। (दोनों चौंक पड़ते हैं। कुलीना

धीरे-धीरे कहती है, जैसे कोई भूली हुई घटना याद कर रही है।) यह उन दिनों की बात है, जब तेरी आयु केवल दो वर्ष की थी। एक दिन मैं भोजन बना रही थी और तेरे पिता जी इसी रसोई घर में इसी स्थान पर बैठे भोजन कर रहे थे। एकाएक तू रो कर दूध के लिये मचलने लगा। मैं ने सोचा, मेरी देह गर्म है। अगर तू ने दूध पिया, तो बीमार हो जाएगा, इस लिए मैं ने दासी से कहा इसे बाहर ले जा कर चुप करा। मगर तू बराबर रोता रहा।

(महामाया पति की ओर कनखियों से देखती है और मुसकराती है)

महाराणा—

फिर ?

कुलीना—

दासी ने तुझे चुप कराने के लिए अपना दूध पिला दिया। आध घंटे बाद मुझे यह बात मालूम हुई, तो मैंने तेरे गले में उँगली डाल कर क़ै करा दी; परन्तु ऐसा प्रतीत होता है दूध की दो-एक बूँदें फिर भी तेरे पेट में रह गईं। दासी के दूध की वे बूँदें आज इस पतन के रूप में प्रकट हुई हैं। यह तेरा दोष नहीं, उसी दूध का प्रभाव है।

महाराणा

'अस्तु' जो कुछ भी हो, इस कायरता के कलङ्क को मैं अपने लहू से भी धोने के लिए तैयार हूँ, अब तुमको यह शिकायत न रहेगी। कोई है, मेरी तलवार और कवच लाओ, और सेना से

कहो, तय्यार हो जाय ।

कुलीना—

देवता वह दिन दिखाएं, जब मेरा बेटा विजयपताका उड़ाता हुआ घर आये ।

(कुलीना चली जाती है । महामाया धीरे-धीरे आकर महाराणा के पास खड़ी हो जाती है । फिर सिर उठाकर उनकी तरफ देखती है, और मुसकराती है ।)

महामाया—

आप ने मेरा अपराध क्षमा किया ?

महाराणा—

तुम्हारा अपराध मेरे जीवन की सब से बड़ी सम्पत्ति है ।

महामाया—

अब आप मुझसे रुष्ट तो नहीं हैं ?

महाराणा—

तुम से रुष्ट होने का यह अर्थ है कि मुझ सा मूर्ख इस राज्य में कोई नहीं है । तू स्त्री नहीं है, देवी है । मेरी दृष्टि में तू इतनी पवित्र, इतनी उज्ज्वल कभी न थी । (थोड़ी देर के बाद) देवी अब आज्ञा दो, सेना तैयार होगी ।

महामाया—

इतनी जल्दी ! क्या आप कल नहीं जा सकते ? एक दिन

विश्राम कर लीजिए।

(महाराणा की तरफ़ प्यार से देखती है, और अपना सिर उनके कन्धे पर रख देती है।)

महाराणा—

(मुसकराकर)—युद्ध के अवसर पर विलासिता की बातें करना देश और जाति के लिए महान् पाप है।

महामाया—

(चौंक उठती है)—अच्छा, हलवा तो खा लीजिए, (लजाकर) आप की प्यारी महामाया ने आप के लिए अपने हाथ से बनाया है।

महाराणा—

(फिर महामाया के शब्द दोहराते हैं)—क्या यह पराजय का पुरस्कार है। (मुसकरा कर) मैं कैसा भाग्यवान् हूँ कि हारकर भी ऐसी मीठी चीजें मिल रही हैं। महामाया ! तूने मेरी आँखें खोल दी हैं, तूने मुझे सीधा मार्ग दिया है, तूने मुझे भूला हुआ कर्तव्य स्मरण करा दिया है। अब वही तू मेरे सामने अपना असीम प्रेम और हृदयग्राही मुसकान लेकर क्यों खड़ी हो गई है ? यदि अब मुझ में फिर निर्बलता आगई, तो यह मेरा नहीं, तेरा दोष होगा। (ठहरकर) तो मेरे हृदय की रानी ! अब आज्ञा है ? जाऊँ ?

महामाया—

हाँ प्राणनाथ ! जाइये और विजय के डंके बजाते हुए आइये। वहाँ समर-स्थल में मेरा प्रेम आपकी रक्षा करेगा।

(महाराणा का तेज़ी से चले जाना)

महामाया—

(उदास होकर)—चले गये—मैंने उनको ताने दे-दे कर फिर भेज दिया ! (आसमान की तरफ़ देखकर) प्रभो ! उनकी रक्षा करो । जिस तरह खुश-खुश गये हैं, उसी तरह खुश-खुश वापस आयें।

(कुलीना का प्रवेश)

कुलीना—

वीर-वधू ! तू अब यहाँ खड़ी क्या सोच रही है ? पगली ! उदास हो गई । नहीं, तुझे यह उदासी, यह हृदय की निर्बलता नहीं सुहाती। तू सबला है, तेरा पति सच्चा वीर है । चल, उठ, यह हलवा सिपाहियों के घरों में बाँट आयें । इसके बाद सेना को विदा करना है।

(पर्दा गिरता है)

—:०:—

प्रो० रामकुमार वर्मा

प्रसिद्ध छाया वादी कवि तथा नाटक-कार के नाते वर्मा जी से हिन्दी संसार भली-भाँति परिचित है। प्रयाग विश्व विद्यालय से एम० ए० पास करने के बाद आप कई वर्षों से वहीं हिन्दी के प्रोफेसर हैं। जन्म-भूमि आपकी मध्य प्रदेश है।

वर्मा जी बड़े ही सुन्दर कवि हैं। निशीथ, रूप राशि, चित्र-रेखा, चन्द्र किरण नाम से आपकी कविताओं के चार संग्रह निकल चुके हैं। चन्द्र किरण अभी हाल ही में निकली है। वह स्फुट कविताओं का संग्रह है। चित्र रेखा पर वर्मा जी को २००० रुपये का देव पुरस्कार मिला था।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त गद्य में वर्मा जी ने 'कबीर का रहस्यवाद' तथा 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नाम की पुस्तकें लिखी हैं।

एकाँकी नाटक वर्मा जी ने हाल ही में लिखने आरम्भ किए हैं 'पृथ्वीराज की आँखें' नाम से आपके एकाँकी नाटकों का एक सुन्दर संग्रह निकल चुका है। इधर जो नाटक आप लिख रहे हैं, वे बहुत ही उच्चकोटि के हैं।

आपकी अन्य पुस्तकें—वीर हमीर, कुलललना, प्रणय परिचय, भीष्म प्रतिज्ञा, मां, सरोजिनी, चित्तौड़ की चित्ता, स्वदेश गान, अभिशाप, मंजिल आदि हैं।

आपकी भाषा कवित्वमय, प्राँजल एवं कल्पना प्रधान होती है। इसी लिये नाटकों के पात्र प्रायः काव्य प्रधान बन गये हैं। वर्तमान 'दस मिनट' एकांकी में भी पवित्रता की रक्षा के लिये पाप—जिसे संसार 'पाप' कहता है—को जीवन की प्रेरणा के साथ मिला दिया है और महादेव त्याग, परोपकार की प्रतिमूर्ति बन कर कष्ट की आग में उतरा है।

—:o:—

दस मिनट

पात्र-परिचय

महादेव—एक साधारण व्यक्ति

बलदेव—महादेव का मित्र

वासंती—बलदेव की बहन

पुलिस-इंस्पेक्टर और चार सिपाही

स्थान

कानपुर से बीस मील दूर

समय

१८५७ के ग़दर के बाद, जब पुलिस अपने कार्य में पूर्ण सतर्क नहीं थी।

यह एकाँकी नाटक प्रयाग-विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा प्रथम बार युनिवर्सिटी-थिएटर-हॉल में, १५ ऑक्टोबर, १६३४ को, अभिनीत हुआ था। निम्न लिखित विद्यार्थियों की भूमिका थी—

महादेव—श्रीरामसनेही वर्मा बी० ए०

बलदेव—श्रीगयाप्रसाद सुलेरे

इंस्पेक्टर—श्रीजनार्दन मिश्र

सिपाही—श्रीरामदास, श्रीश्रीकृष्ण गुप्त बी० ए०, श्रीसत्यनारायण मिश्र बी० ए० और श्रीबद्रीप्रसाद राय बी० ए०

दस मिनट

[आधी रात का समय । एक सजा हुआ कमरा । उत्तर और दक्षिण दिशाओं में दो दरवाज़े हैं। उत्तर दिशा का दरवाज़ा बहुत छोटा है, जिसका संबंध बाहर जानेवाली सुरंग से है । दक्षिण दिशा के दरवाज़े के समीप एक खिड़की है, जो बंद है। कमरे के ठीक बीच में एक टेबिल है, जिसके दोनों ओर दो कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं। सामने एक घड़ी लगी हुई है, जिसमें दो बजकर पंद्रह मिनट हुए हैं।

कमरे के एक कोने में एक पलँग बिछा है, जो कुछ कुछ पुराना हो गया है। उस पर एक प्रौढ़ व्यक्ति बहुत साधारण कपड़े पहने सो रहा है। उसकी आयु लगभग पैंतीस वर्ष की है। उसके मुख पर थकावट के चिह्न हैं। चारों ओर शांति है । कमरे में धीमा प्रकाश होरहा है। दक्षिण के दरवाज़े पर खट्-खट् की आवाज़]

एक स्वर—

महा...देव, म...हा...देव !

(महादेव आलस से सिर उठाता है। वह आँखें मलता हुआ भौंहें सिकोड़कर दरवाज़े की तरफ़ देखता है।)

वही स्वर—

(महादे...व ! (अंतिम स्वर 'व' धीमा)

महादेव—

(इच्छा न होते हुए भी उठकर) आधीरात को भी चैन नहीं। (दरवाज़े के समीप पहुँचकर चिढ़े हुए स्वर में) कौन है इस समय ?

वही स्वर—

(भर्राया हुआ) बलदेव।

महादेव—

(आश्चर्य से) ऐं बलदेव ! तुम इस (दरवाज़ा खोलता है) समय कैसे (चौंककर पीछे हटते हुए) आ...(मंद स्वर) ए...? यह क्या...?

[बलदेव का प्रवेश। वह पच्चीस वर्ष का नवयुवक है। उसके वस्त्र खून से रँगे हुए हैं। कुर्ते का ऊपरी हिस्सा फटा हुआ है। हाथ में छुरी है, जो हाथ काँपने के कारण वस्त्र उलझ रही है। बलदेव के मुख पर भय अंकित है। वह सहमी हुई नज़रों से इधर उधर देख रहा है।]

बलदेव—

(भर्राई हुई आवाज़ में) महादेव, मैंने खू ..न कर दिया !

महादेव—

(विकृत होकर) खून कर दिया ? किसका ? कब ?

बलदेव—

(सँभलकर) नहीं, नहीं, मैंने खून नहीं किया। किसी दूसरे आदमी ने खून कर, मेरे हाथ में छुरी दे दी। मैं निर्दोष हूँ। कौन कहता है, मैंने खून किया है ? ऐं ?

महादेव—

अरे, अभी तो तुम्हीं ने कहा था। तुम्हारे कपड़े...।

(बलदेव के कपड़े हाथ से छूता है।)

बलदेव—

(शिथिल होकर) मैंने कहा था ? तो हाँ मैंने खून कर दिया उसी पापी केशव का। मेरी बहन को मैली दृष्टि से देखनेवाले (ओंठ चबाते हुए) केशव का। (व्यङ्ग की हँसी हँसकर) हूँः, छिपकर आया था। जब संसार की आँखें सो रही थीं। जाग रही थीं केवल चार आँखें। दो ईश्वर की और दो मेरी। अपने हृदय को काले पाप में और अपने शरीर को काले वस्त्र में छिपाकर आया था। (झुककर) इस तरह झुककर आ रहा था। मैंने एक ही बार में उसे पूरा झुका दिया। देखते हो, यह छुरी और सफलता के रंग में रँगे हुए ये कपड़े !

(गर्व की मुद्रा)

महादेव—

(क्रोध से) तुम्हारी बहन को मैली दृष्टि से देखता था वह ? तुमने छुरी कहाँ भोंकी ?

बलदेव—

छुरी ? उसकी बग़ल में । यों । (हवा में छुरी का वार करता है ।

महादेव—

बग़ल में ? नासमझ ! आँखों में घुसेड़ देनी चाहिए थी । वे पापी आँखें संसार का प्रकाश न देख सकतीं । जिन आँखों में पाप का रक्त था, उन आँखों में बहन के अपमान का रक्त बहना चाहिए था । छिः ! बदला लेना भी न आया ! (घूरता है ।)

बलदेव—

(शीघ्रता से) तो वह मैं अभी कर सकता हूँ । फिर जाता हूँ ।

(उद्यत होता है ।)

महादेव—

तुम तो इस प्रकार कह रहे हो, जैसे वह वहीं पड़ा होगा । पुलिस उसे न जाने कब का उठा ले गई होगी ।

बलदेव—

पुलिस को वह शरीर मिल नहीं सकता । जब तक मैं उसके अंग-अंग काटकर न फेंक दूँगा, तब तक मुझे शांति न मिलेगी ।

मैंने लाश छिपा रक्खी है। वहीं पास की सबसे कटीली झाड़ी में।

महादेव—

पर उसे अब मारकर ही क्या करोगे? अब तो वह नीच मर ही गया होगा। अब उसे फिर मारने से क्या लाभ?

बलदेव—

(उग्रता से) नहीं, नहीं, बदला लेना सीखने दो। उसकी आँखें अब भी खुली होंगी, मानो उनकी वासनामयी प्यास अभी नहीं बुझी। उफ़, नारकी! (महादेव से) तुम्हारे रोकने पर भी मैं (उत्तर दिशा के छोटे दरवाज़े से प्रस्थान। नेपथ्य से वाक्य की पूर्ति।) अवश्य जाऊँगा। दिल की आग (क्रमशः दूर होते हुए मंद स्वर से) तो बुझा...सकूँगा।

महादेव—

(खिड़की खोलकर देखता हुआ) गया—चला गया! आह पापी संसार!

(महादेव सोचता हुआ पलँग के ऊपर बैठ जाता है। दक्षिण दरवाज़े पर फिर खटका होता है।)

महादेव—

(दृढ़ता से) अब कौन है? (उद्विग्न होकर) मेरे लिये यह रात भी दिन है!

(खिड़की पर खटका होता है।)

महादेव—

(दरवाज़े के पास जाकर) कौन है? नाम बतलाओ।

बाहर से—

पुलिस ।

महादेव—

पुलिस ? पुलिस का इस समय मेरे यहाँ क्या काम ?

बाहर से—

(आज्ञा के स्वर में) दरवाज़ा खोलो !

[महादेव दरवाज़ा खोलता है । पुलिस-इंस्पेक्टर का प्रवेश । वह तीस वर्ष की मोटा-ताज़ा आदमी है । उसकी मूछें चढ़ी हुई हैं । पूरी वर्दी पहने हुए है । उसके हाथ में पिस्तौल है । साथ में चार सिपाही हैं, जो सभी पुलिस की वर्दी में हैं । सभी सिपाहियों के हाथों में भाले हैं ।]

इंस्पेक्टर—

(आते ही) सारे हथियार रख दो ।

(पिस्तौल सामने करता है ।)

महादेव—

(पीछे हटकर) कैसे हथियार ? किसके हथियार ?

इंस्पेक्टर—

(घूरते हुए) अच्छा, तुम अकेले ही हो । तुम्हारा नाम महादेव है ?

महादेव—

हाँ ।

इंस्पेक्टर—

तुम्हारे घर अभी कोई आदमी आया था ?

महादेव—

शायद ।

इंस्पेक्टर—

शायद ? मैंने दूर से देखा । एक आदमी इसी ओर चला आ रहा था ।

महादेव—

[धीरे-धीरे] आदमी...नहीं...था... ।

इंस्पेक्टर—

शैतान था ?

[गर्व से कुर्सी पर बैठता है]

महादेव—

नहीं, देवता । देवता था । अपनी बहन के सम्मान की रक्षा करनेवाला एक देवता था ।

इंस्पेक्टर—

देवता ? इसके क्या मानी ?

महादेव—

देवता के क्या मानी होते हैं ?

इंस्पेक्टर—

खाक ! (पैर पटक कर) बारह और दो बजे के बीच में

एक खून हुआ है। खून के धब्बे पड़े हुए पाए गए हैं। गश्त करते समय मेरे जूते बिलकुल खून से लथपथ हो गए। उसी समय एक मनुष्य इस घर की ओर आता हुआ दिखाई दिया। लाश खोजने पर भी मुझे नहीं मिली, वह न-जाने कहाँ है!

महादेव—

[शांति से] वह मनुष्य के सिवा और किसी का खून नहीं हो सकता?

इंस्पेक्टर—

मैं उसे मनुष्य का खून ही क्यों न मानूँ? जब वह मनुष्य संदेहावस्था में आधी रात को भागा है। मुझे अभी लाश खोजनी होगी। यह सोचकर कि जब तक मैं लाश खोजूँ, कहीं वह हत्यारा भाग न जाय, इसीलिये मैं पहले उस आदमी को पकड़ लेना चाहता हूँ। फिर चाहे वह निरपराध ही क्यों न निकले। बतलाइए, वह मनुष्य कहाँ है। उसने बारह और दो बजे के बीच में खून किया है। [सोचकर] हाँ उसी समय खून हुआ है।

महादेव—

[निर्भयता से] हुआ करे, उससे मेरा क्या? [उन्माद में] उसी खून को लेकर प्रभात की पूर्व दिशा मुसकरा उठेगी, और लालिमा से सारे संसार में आलोक छा जायगा। संसार के कण-कण में वही रक्त जीवन का अनंत संदेश एक बार ही प्रातःकाल की मधुर समीर में बिखरा देगा।

इंस्पेक्टर—

(तीव्र स्वर से) यह क्या बक रहे हो ? (मुँह बनाकर) एब्सर्ड, नानसेन्स ! जो कुछ पूछता हूँ, ठीक-ठीक बतलाओ । जो आदमी अभी-अभी यहाँ आया था, वह कहाँ गया ?

महादेव—

(सोचते हुए) वह दस मिनट बाद आएगा । ठीक दस मिनट बाद । उस समय आईए ।

इंस्पेक्टर—(व्यङ्ग से) आप कृपया मकान खाली कर दें । मैं मकान की तलाशी लूँगा । यह चाहे दस मिनट में आए, चाहे बीस मिनट में । आप समझे न ?

(शान से उठ खड़ा होता है ।)

महादेव—

अच्छा, आपके पास तलाशी का वारंट है ?

इंस्पेक्टर—

(गर्व से) मेरा हुक्म ही वारंट है जनाब !

महादेव—

(शांति से) आधी रात के समय यह आपकी ज्यादती है । खैर मेरे पास केवल यही तो कमरा है । जहाँ तक आपकी नज़र जाती है, उतना ही हिस्सा मेरे अधिकार में है । उसे ही देख लीजिए । क्यों, दिखाई पड़ता है कोई खूनी ?

इंस्पेक्टर—

बस, तुम्हारे अधिकार में इतना ही स्थान है।

महादेव—

केवल इस मकान में इतना ही हिस्सा बच रहा है। शेष गिर गया है। उसके पीछे मैदान है।

इंस्पेक्टर—

(नम्र होकर) देखो, यदि बतला दोगे, तो भारी इनाम पाओगे समझे? नहीं तो संदेह में मैं तुम्हीं को गिरफ्तार करूँगा।

महादेव—

(आगे बढ़कर) खुशी से गिरफ्तार कर सकते हैं आप। पर मैं धर्म की शपथ लेकर कह सकता हूँ कि मैं बिलकुल निरपराध हूँ।

इंस्पेक्टर—

मैं धर्म-वर्म कुछ नहीं जानता। सच-सच बतला दो, तुम खूनी के बारे में क्या जानते हो?

(महादेव को तीव्र दृष्टि से देखता है।)

महादेव—

(उत्साह से) कह रहा हूँ, आप दस मिनट बाद आइए। दो बजकर चालीस मिनट पर।

(घड़ी की ओर देखता है।)

इंस्पेक्टर—

और, यदि मैं दस मिनट यहीं ठहरूँ, तो?

महादेव—

(सोच कर) तो शायद वह न आए।

इंस्पेक्टर—

क्यों ? (जिज्ञासा की दृष्टि)

महादेव—

पुलिस और खूनी में कुत्ते और बिल्ली का संबंध है। दोनों एक दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखा करते हैं।

इंस्पेक्टर—

अच्छा, (मुसकराकर) एम्यूज़िंग नानसेन्स ! अच्छा, मैं आपकी तलाशी दस मिनट बाद लूँगा। (सिपाहियों से) देखो, इस मकान को चारों तरफ़ से घेर लो। मैं इस बीच में लाश का पता लगा लेता हूँ, जिससे मेरा संदेह मिट जाये। मैं अभी आया।

सिपाही—

(सलाम करके) बहुत अच्छा।

(जाते हैं।)

इंस्पेक्टर—

(व्यङ्ग से) अच्छा, आप दस मिनट आराम कर सकते हैं।

(इंस्पेक्टर का प्रस्थान। महादेव दरवाज़ा बंद करता है। वह कुछ क्षण टेबल के पास सिर झुकाए खड़ा रहता है। उत्तर दरवाज़े से आवाज़ आती है। महादेव धीरे से जाकर दरवाज़ा खोलता है। बलदेव का

प्रवेश । वह और भी अधिक खून से
रँगा हुआ है ।)

बलदेव—

(प्रसन्न होकर) पार हो गई, छुरी उसकी दोनों आँखों के पार हो गई । अब शायद अगले जन्म में वह किसी को मैली दृष्टि से न देखे।

महादेव—

(गंभीर होकर) संभव है, अगले जन्म में वह अंधा हो। पाप-दृष्टि से देखना कैसा ?

बलदेव—

(अपने ही विचारों में लीन होकर, आँखें फाड़कर) उफ़्, रक्त से समस्त पृथ्वी लाल हो गई थी, मानो मेरे इस कृत्य को देखकर पृथ्वी भी खिलखिला उठी थी । मैं भी दिल खोलकर खूब हँसा ।

(मुँह विकृत कर हँसता है ।)

महादेव—

(गंभीर होकर) उसी उल्लास की हँसी से लाल होकर कल प्रातःकाल सूरज हँसेगा, गुलाब हँसेगा, और उसके साथ-साथ कलियाँ भी......। हाँ, एक काम करो ।

बलदेव—

(उत्सुक होकर) वह क्या ?

महादेव—

यह विजय के रंग में रँगा हुआ कपड़ा उतार दो । (संदूक से

नया कुरता निकालते हुए) यह लो, नया कुरता। इसे पहन लो। इस दुनिया की पलकों में संदेह की पुतलियाँ हैं।

बलदेव—

(दृढ़ता से) रहने दो। इसका उत्तर मैं अपने गले के खून से दूँगा।

महादेव—

न्याय से लड़ने वाले शत्रु को अपने गले के खून से उत्तर देना चाहिए। यह तो न्याय का युद्ध नहीं है। तुमने चाहे कितने ही बड़े पापी को न्याय युक्त होकर मारा है, पर प्राण लेने के कारण तुम्हें थोड़ी-न थोड़ी सज़ा मिलेगी ज़रूर। चाहिए तो यह था कि न्यायी तुम्हें तुम्हारे कार्य पर पुरस्कृत करता, पर क्या कभी ऐसा होना संभव है?

बलदेव—

(सोचकर) अच्छा, तुम (कुरता उतारते हुए) न मानोगे। तुम्हारा हठ बड़ा कठिन है। अब तो (नया कुरता पहनते हुए) तुम प्रसन्न हुए।

महादेव—

थोड़ा विश्राम करो। दस मिनट तक। (सोचकर) नहीं, दस मिनट तक क्या करोगे? जाओ, अपनी बहन का समाचार तो लो।

बलदेव—

(स्थिर होकर) वह तो माता के प्रेम के समान शांत और

स्निग्ध संसार में विचर रही होगी। मैं उसे उस शांति के निर्झर से निकाल कर क्यों जाग्रति के पत्थर पर फेंक दूँ? प्रातःकाल सूर्य की किरणें उसे स्वयं जगा लेंगी।

महादेव—

नहीं भाई के हाथ सूर्य की किरणों से अधिक कोमल और प्रेम-मय हैं। महात्मा तुलसी ने सहोदर भ्राता के सम्बन्ध में क्या लिखा है?

बलदेव—

(आश्चर्य से) तो क्या मुझे ठहरने न दोगे?

महादेव—

भाई, यहाँ ठहरने की अपेक्षा बहन का कुशल-समाचार जान लेना अधिक आवश्यक है। जिस बहन के सम्मान का मूल्य एक मनुष्य के जीवन से अधिक है, उसकी कुशल जानने के विषय में इतना संकोच क्यों है? उससे मिलकर तुम फिर यहाँ आकर मुझसे बातें कर सकते हो।

बलदेव—

(खून से रँगे हुए कुरते और छुरी को सँभालकर उठाते हुए) अच्छा भाई, जाता हुँ। अभी थोड़ी देर बाद आऊँगा। यदि पुलिस को मेरी गंध न मिली, तो......।

महादेव—

(जिज्ञासा से) यह कुरता और छुरी क्यों लिए जाते हो?

दस मिनट]

बहन के समीप इनका क्या काम ?

बलदेव—

(हताश होकर) तुम मेरी इच्छा सदैव इसी प्रकार रोक दिया करते हो।

[बलदेव का एक कोने में छुरी और कुरता रखकर उत्तर दरवाज़े से प्रस्थान।]

महादेव—

(सोचता हुआ) यह सम्मान...का...प्रतिशोध !

(कुर्सी पर बैठकर गुनगुनाता है।)

मेरी साँसों के स्वर में
गूँजे मेरा बलिदान।
गूँजे मेरा बलिदान।

(दक्षिण-दरवाज़े पर खटका) जीवन...(फिर खटका) में...ऐं...पा...।...।

महादेव—

ठहरो।

(खून से भरा हुआ कुरता पहनकर हाथ में छुरी लेता है। दरवाज़ा खोलते हुए)

कौन है ?

(इंस्पेक्टर का पिस्तौल लिए प्रवेश)

इंस्पेक्टर—

खूनी किधर है ? (महादेव को खून के वस्त्रों में देखकर) ऐं...खूनी...?

महादेव—

(दृढ़ता से) मैं हूँ खूनी ।

इंस्पेक्टर—

तुम हो खूनी ?

(आश्चर्य प्रकट करता है)

सिपाहियों ने अभी तुम्हारे कमरे में कुछ बातों की भनक सुनी थी।

महादेव—

मैं गाना गा रहा था ।

इंस्पेक्टर—

हूँ ! (घूरता है) तुम खूनी हो ?

महादेव—

देखते नहीं ये कपड़े और यह छुरी ?

इंस्पेक्टर—

क्या तुम्हीं खूनी हो ? तुम तो कहते थे, दस मिनट बाद खूनी आएगा ।

महादेव—

हाँ, दस मिनट बाद तुम्हें खूनी मिला या नहीं ? खूनी तुम्हारे सामने खड़ा है, और तुम संदेह में पड़े हुए हो । लाश आपने देखी,

उसकी बग़ल और आँखों में घाव हैं। (तीव्र दृष्टि)

इंस्पेक्टर—

(सिर हिलाते हुए) हाँ, पास ही एक काँटेदार झाड़ी में लाश बुरी तरह घायल मिली। उसकी आँखें फोड़ डाली गई हैं, और उसकी बग़ल में छुरी घुसेड़ी गई।

महादेव—

(आगे बढ़कर) और वह छुरी यह है।

(छुरी दिखलाता है।)

इंस्पेक्टर—

(सिपाहियों से) गिरफ्तार करो इसे। थाने में ले चलो। इस मकान में ताला बंद कर दो। इसके कोई संबंधी तो हैं ही नहीं, थाने पर जाकर मामला तय होगा।

(सिपाही महादेव को गिरफ्तार करते हैं। उत्तर दरवाज़े से आवाज़ आती है)

महा...देव!

(फिर धीमे स्वर में)

महा......देव!

इंस्पेक्टर—

(तीव्र स्वर में) कौन है?

बाहर से—

उसका मित्र बलदेव।

(बाहर से धीमे स्वर में) उसके मित्र की बहन वासंती !

इंस्पेक्टर—

(ज़ोर से) इस समय महादेव किसी से नहीं मिल सकता। वह खूनी है। (सिपाहियों से) जल्दी चलो।

(सबका प्रस्थान।)

[बाहर से धीमे स्वर में फिर महादेव का नाम सूनेपन में गूँजता है।)

—:०:—

श्रीभुवनेश्वर बी० ए०

श्री भुवनेश्वर अभी युवक ही हैं। पर सृजन की शक्ति आपके अन्दर फूटी पड़ती है। आप का जन्म स्थान लखनऊ है पर जीवन-संघर्ष आप को एक स्थान पर टिकने नहीं देता। लिखना आप ने १६३३ में ही आरम्भ कर दिया था, जब कि आपका पहला नाटक हंस में छपा। भारती भंडार से आप के एकाँकी नाटकों का एक संग्रह 'कारवां' के नाम से निकल चुका है।

कहना न होगा कि श्री भुवनेश्वर की शैली नाटक के प्रति जितनी उदार है उतनी ही कठोर भी है। वह जितनी ही यथार्थ है उतनी ही स्पष्ट। आप के नाटकों का वातावरण धूमिल नहीं, काल्पनिक भी नहीं, यथार्थ है, जिसमें सत्य, असत्य, पाप पुण्य जो कुछ हैं वे नंगे हैं जो आदर्श की तरह कठोर, प्रेम की तरह स्निग्ध हैं। इसी लिये लेखक निर्झर की अजस्र धारा की तरह भाषा की कठोरता, सरसता

की परवाह किये बिना बड़ी गति से दौड़ता है, और एक श्वास में बात कहने वाले प्राणी की तरह सब कुछ कह जाता है, जो चोट खाये व्यक्ति की तरह हृदय में चुभ जाता है।

'स्ट्राइक'

पात्र

पहला दृश्य

पुरुष

स्त्री

दूसरा दृश्य

तीन पुरुष

एक युवक

तीसरा दृश्य

पहले दृश्य का पुरुष

दूसरे दृश्य का युवक

'स्ट्राईक

पहला दृश्य

एक मध्य वर्ग बँगले के खाने का कमरा, जो बरामदे में एक तरफ़ परदे डाल कर बना लिया गया है। एक बड़ा-सा साइड टेबिल जिस पर चीनी के बरतन, प्लेट, प्याले नुमायशी ढंग से रखे हैं; पास एक छोटी मेज़ पर फोर्स, क्वाकरओट्स, पॉल्सन बटर और अचार के दो अमृतबान सजे हैं। खाने की मेज़ अण्डाकार है, जिसके चारों तरफ चार कुर्सियाँ पड़ी हैं। दो पर एक स्त्री और पुरुष बैठे हैं, पुरुष, सुपुरुष; स्त्री कुछ बोले तो पता चले, कम से कम दस मिनट से खामोश तीसरे पहर की चाय पी रही है।]

स्त्री—

(चाय का प्याला घुमाते हुए) तो सरदार साहब बहुत चौंके ?

पुरुष—

(अनमना) हूँ...

स्त्री—

(कुछ कहने के लिये साँस भरकर रह जाती है।)

पुरुष—

तो आज नौकर दोनों छुट्टी ले गये हैं...

स्त्री—

(दो घूँट चाय पीकर रूमाल से ओंठ पोंछती हुई) सरदार साहब की डाइरेक्टरों में तो खूब चलती है...

पुरुष—

(हास्यास्पद उत्साह से) यह ! यही तो इन कमबख्तों को मिटा देता है। यह समझते हैं कि बहुमत इन्हें गद्हे से बछड़ा बना देगा ! कम्बख्त यह नहीं समझते कि अब बहुमत के माने ही बदल गये हैं। बहुमत थोड़े से बेज़रा, अधमरे केचुओं का नाम थोड़ा ही है ! वह शक्ति, दुनिया को हिला देनेवाली शक्ति का नाम है और वह हमेशा एक आदमी—एक आदमी में होती है।

(स्त्री चुपचाप चाय उँडेलती है और दूध डालकर ध्यान से प्याले को देख रही है। पुरुष रोटी पर बेरहमी से मक्खन लगा रहा है और कुछ देर

खामोशी-सी हो जाती है।)

पुरुष—

सरदार साहब, राजा साहब, बाबू साहब, सब के साथ यही दिक्क़त है। कम्बख्त जीवन की कला नहीं जानते, म्रियमान से निहत्थे पाजियों की तरह यह मौत तक खिसकते जाते हैं! जब उन्होंने देखा कि मैं उनसे भीख नहीं माँगता, उनके तलवे नहीं सहलाता, ग्रह नहीं बनाता, षड्यंत्र नहीं करता तो मुँह बाकर रह गये; जी हाँ, मुँह बाकर रह गये! (प्याला रखकर हँसता है) यह कुछ बूझते-समझते तो हैं नहीं। जब कभी इनके ठोकर लगती है, तो बस खड़े होकर मुँह बा देते हैं। (आवाज़ धीमी करता है) लेकिन कपड़ों के नीचे यह सब इज्ज़तदार मोटे घुड़मुँहे, गधे हैं गधे! हाँ, व्यवस्थित समाज में इनका एक लाभ जरूर है—यह ठोकरें खूब झेल लेते हैं! डिवीडेन्ड कम हुआ, इनके हाथ-पाँव फूल गये; किसी कालिज के चिंचिल्ले ने किताबी अंग्रेजी में स्ट्राइक की धमकी दे दी, इनके हाथ-पाँव फूल गये, यह बौखला गये। (हाथ को नाटकीय ढंग से हिलाते हुए) मैंने साफ़ एलान कर दिया कि मैं तीन साल तक कोई डिवीडेंड नहीं बाँटूँगा, अँगूठा कर लो मेरा!

(भद्दी तौर से अँगूठा दिखाता है)

(स्त्री चाय खत्म करके घड़ी की तरफ देखती है और भँवों में कुछ घुसपुसाती है, पुरुष बेचारा क्या समझे। वह एकाग्र खाता रहता है। कमरे में फिर निस्तब्धता

छा जाती है।)

पुरुष—

(ऊबा-सा) तो आज नौकर दोनों ग़ायब! मेम साहब ने चाय बनाई है, पर शाम को क्या होगा? मेरी तो मीटिंग शायद आठ पर खत्म होगी।

स्त्री—

(रूमाल से उँगलियाँ मलते) मैं...मैं (सहसा) तो जा रही हूँ।

पुरुष—

कहाँ जा रही हो? कहाँ?

स्त्री—

(बाहर की तरफ़ रूमाल हिलाते) वहाँ?

पुरुष—

(बाहर की तरफ़ देखता है) वहाँ? बाज़ार, शॉपिंग के लिए?

स्त्री—

नहीं, मैं तो लखनऊ जा रही हूँ आखिरी जी० आई० पी से लौट आऊँगी।

पुरुष—

(अपना आश्चर्य भरसक छिपाते हुए) लखनऊ, जी० आई० पी, आखिर क्यों?

स्त्री—

(चाय खत्म कर चुकी है) कुछ नहीं, ऐसे ही घूमने। सरदार साहब की बीबी हैं, मिसेज़ निहाल हैं, मैं हूँ, मिस मित्तर हैं—उन्हीं को कुछ काम है, न जाने रेडियो लेने जा रही हैं क्या।

पुरुष—

(उँगली पोंछ रहा है) तो यह कहो, (रुककर) लेकिन कार क्यों नहीं ले जातीं ?

स्त्री—

नहीं, कार—कार नहीं। ज्यादा से ज्यादा जी० आई० पी० से लौट आयेंगे। वही शायद आखिरी गाड़ी है।

पुरुष—

(जेब से सोने की जेब-घड़ी निकालकर और उसे वास्केट पर पोंछकर) तो जी० आई० पी० यहाँ आती है १०-१५ पर, तुम यहाँ १०-२५ पर आ जाओगी। कार मैं पम्प पर छोड़ दूँगा—अरे मिलखीराम के पेट्रोल पम्प पर। खाने के लिए यह करना कि मैं कार में टिफिन कैरियर रख लूँगा, तुम स्टेशन से सालन वगैरा ले आना, न होगा रोटियाँ यहीं बन जायँगी। (जेब में घड़ी रख लेता है और जेबें टटोलकर सस्ता सिगरेट केस निकालता है और एक सिगरेट जलाता है, धुँआ छोड़ते हुए) अब सरदार साहब के मिज़ाज ठिकाने आ जाँयगे। कोई उसूल नहीं, कोई हौसला नहीं भला इसे ज़िंदगी कहते हैं !

स्त्री—

तो जी० आई० पी० यहाँ साढ़े दस पर आती है ?

पुरुष—

(फिर घड़ी निकाल लेता है और फिर उसे पोंछता है।) नहीं १०।१५ पर। और जी० आई० पी० की गाड़ियाँ लेट नहीं होतीं—यह ई० आई० आर० नहीं है। (जैसे कोई अपनी ही चीज़ का बखान कर रहा हो।) दुनिया का भविष्य उचित समय पर उचित काम करने वालों के हाथ में है—दुनिया की सारी दौलत, सारा आराम, सारा जस उसका है जो अपनी जगह पर क़ायम है और काम का जो छोटा हिस्सा उसका है उसे मशीन की तरह पूरा कर रहा है। अमरीका का एक बहुत बड़ा लेखक है बरनार्ड शा, उसने कहा है...

स्त्री—

(सहसा ऊबी-सी) मिसेज़ निहाल ने कहा तो था कि वह अपनी कार भेजेंगी। तुम्हें मीटिंग में कब जाना है ?

पुरुष—

(चौंककर घड़ी की तरफ़ देखता है) साढ़े चार !
मैं चला—(गुनगुनाता है) चार बजकर सत्रह—तीन या चार मिनट मुझे ड्यूक कम्पनी में लगेंगे, चार—इक्कीस—खैर, तो चलो तुम्हें पिन्डी के यहाँ छोड़ दूँगा; वहाँ से—या आओ निहाल के वहाँ तक, दो मिनट की ही तो बात है।

स्त्री—

(अँगड़ाई लेते हुए) अच्छा ? (खड़ी हो जाती है) यही साड़ी पहने रहें या दूसरी पहन...

(मुड़कर साड़ी देख रही है ।)

पुरुष—

(सिगरेट दो-तीन बार चूसकर फेंकते हुए) जैसा तुम्हारा जी चाहे । लेकिन तुम्हें मेरे सर की क़सम, बतला दो लखनऊ में क्या है ?

स्त्री—

(बरबस मुस्कराती है) लखनऊ में—बहुत-सी चीजें हैं—छोटा-बड़ा इमामबाड़ा, चिड़ियाघर, हज़रतगंज, अमीना...

पुरुष—

नहीं, मैं पूछता हूँ, आज शाम को कोई ख़ास बात ?

स्त्री—

(जाते हुए) आज शाम को खास बात ? कोई खास बात नहीं है ।

पुरुष—

(जैसे एक बड़ी मुहिम के लिए तैयार होते हुए) यहाँ आओ, यहाँ बैठो । (स्त्री घूमकर खड़ी हो जाती है ।) यहाँ बैठो, मैं देखता हूँ, तुम कुछ दिनों से ऐसी ही हो रही हो । मैं जानता हूँ, तुम्हारी यहाँ तबीयत नहीं बहलती पर छुट्टियों में निर्मल आ जायगा,

मोनी भी शायद यहीं आवे, तुम्हें मालूम हुआ, मोनी अबकी बी० ए० में फर्स्ट रही। लेकिन हाँ, बताओ यह तुम्हें हुआ क्या है?

स्त्री—

होता क्या? कुछ नहीं हुआ; तुम अगर मेरी तबियत का एक खाका बनाओ तो लकीर वहाँ...वहाँ बिजली तक पहुँच जाय—

पुरुष—

(उत्साहित होकर) हाँ, लेकिन फिर यह बेताबी क्यों है? देखो आदमी के सामने सब से बड़ी समस्या यह है कि वह अपनी बची खुची शक्ति किस तरह काम में ले आये। आदिम जंगलीपन से लेकर आज तक की सभ्यता तक जो कुछ भी आदमी ने अपने को दुखी या सुखी बनाने के लिए किया है, वह इस शक्ति को काम में लाने के लिए। फिर दुःख या सुख तो इतनी ठोस चीज़ें हैं कि एक दिन तुम देखोगी कि यह शीशियों में बिका करेंगी, शीशियों में! मुझे इन टिसुये बहानेवालों से नफ़रत है, सख्त नफ़रत! यह सिर्फ हरैले ही नहीं हैं, यह तो अपनी हार के गीत गाते हैं, नारे लगाते हैं।

स्त्री—

अच्छा उठो, फिर तुम मुझे कार पर न पहुँचाओगे?

पुरुष—

(फिर घड़ी निकालता है और उसे पोंछता है) असम्भव!

स्ट्राईक]

तुम अब मिसेज़ निहाल का इंतज़ार करो ।

[जल्दी से भीतर चला जाता है, स्त्री वहीं बाहर की तरफ घूरती हुई बैठी रहती है । थोड़ी देर में पुरुष भीतर से आता है, बग़ल में पुराना फेल्ट हैट दाये हाथ के छोटे डन्डे को रूमाल से पोंछ रहा है ।]

पुरुष—

१० । १५ पर तुम स्टेशन आ जाओगी, वहाँ से मिलखीराम तक का रास्ता है ५ मिनट का, १० । २०, यानी १० । ३० तक तुम यहाँ होगी, यानी १०·४० तक हम-तुम यहीं इसी टेबुल पर डिनर के लिए बैठे होंगे ? मैं स्टेशन आ जाता लेकिन मिस मित्तर—तुम व्यर्थ जलोगी । (भद्दी हँसी हँसता है, स्त्री पर जैसे इसका कोई असर नहीं होता) अच्छा, चीरियो !

[पैड़ियों पर से तेज़ी से उतरता हुआ चला जाता है । स्त्री वैसे ही बैठी रहती है, फिर अनमनी भीतर उठकर चल देती है । स्टेज पर एकबारगी अन्धकार हो जाता है । बीच में दो बार रोशनी होती है जिसमें पूरे सीन में खाली मेज़ और कुर्सियाँ दिखलाई देती है । घड़ी जिसमें पलले ८ । ३० बजा है फिर ६ ।]

———

दूसरा दृश्य

एक मध्यवर्ग क्लब का कमरा, तेज़ तीखी रोशनी हो रही है। मेज़ों पर ताश और भरी हुई एश-ट्रे बिखरी हैं, कुर्सियाँ भी अनेक चारों तरफ तितर-बितर पड़ी हैं, कोने मे एक बड़ी सी फ्रेंच विन्डो (खिड़की) के सामने सोफों पर तीन आदमी बैठे हैं। सीन में सिर्फ उनकी पीठें दिखाई दे रही हैं। पास ही एक कुर्सी पर सामने की एक छोटी मेज़ पर सुरुचि से कपड़े पहने एक युवक बराबर ताश फेंट रहा है। खिड़की के फ्रेम में तारों से खिला हुआ आकाश तस्वीर की तरह जड़ा हुआ है। दीवार की बड़ी घड़ी ८।४५ बजा रही है। कमरे में सब खामोश हैं, पर निस्त-ब्धता नहीं है]

पहला आदमी—

न मालूम मैं यह मनहूस ब्रिज का खेल क्यों खेलता हूँ ?

(आवाज़ वृद्ध-सी है।)

दूसरा—

(जम्हाई लेता हुआ) क्या किया जाय। आओ कोई और झंडा ऊँचा करें।

तीसरा—

यह लोग आते भी तो नहीं। (कुर्सी पर के युवक की तरफ घूमकर) देखो जी, तुम मिश्रित समाज की चर्चा चलाओ...

[दोनों आदमी घूमकर युवक की तरफ देखते हैं। तीनों आदमी मोटे अधेड़, क़ीमती कपड़े पहने और अत्यन्त संतुष्ट हैं।]

युवक—

(झेंपता-सा) मैं कैसे उठा सकता हूँ। हाँ, मेरी पत्नी आती तो मैं ज़रूर ऐसा करता, देखिये उन्हें...

[तीनों एकबारगी 'हूँ' करते हैं और फिर मुड़के बैठ जाते हैं और खामोश हो जाते हैं। युवक फिर ताश फेटने लगता है।]

पहला—

(जेब से सिगरेट-केस निकालता है और फिर रख लेता है) चलो भई, चलें, मुझे तो सुबह से ही काम है।

दूसरा—

(मुड़कर घड़ी देखते हुए) यह श्रीचन्द बुत्ता दे गया!

पहला—

नहीं भाई, कहीं फँस गया होगा। उसके तो मकड़ी की तरह सौ आँखें हैं।

युवक—

वह आयँगे ज़रूर, मेरी तो दावत कर गये हैं।

तीनों—

(मुड़कर) अच्छा ? और पट्ठे की पत्नी आज है नहीं।

[सब एक दूसरे की ओर देखते हैं।]

युवक—

अच्छा, मुझे मालूम होता तो मैं कभी प्रतीक्षा न करता।

पहला—

इसे—श्रीचंद को देखो, जब यह वकालत छोड़कर व्यापार में आ रहा था, मुझे इसकी सफलता की तनिक भी आशा न थी, पर देखो—आज वह एक कम्पनी का सर्वेसर्वा बन गया है।

[हँसता है।]

दूसरा—

(जम्हाई लेता और अँगूठियोंवाली उँगली से चुटकियाँ बजाता है।) मैं तो भाई दिन-ब-दिन मानता जाता हूँ कि भाग्य भी कोई चीज़ है।

[युवक ताश रखकर एकाग्र हो, इन लोगों की बातें सुनता है]

तीसरा—

(उठ खड़ा होता है) आओ भई चलो। आइये मिस्टर सहाय, आपको कार पर छोड़ आऊँ। घर तक...

पहला—

बैठो न, श्रीचंद आता ही होगा।

युवक—

और आपसे तो उन्होंने भी कार में छोड़ आने के लिए कहा था।

तीसरा—

(बैठते हुए) हूँ, हूँ; तब तो रुकना ही पड़ेगा।

[युवक कोई भी बात शुरू करने का इरादा करता है।]

युवक—

आज मेरठ षड्यन्त्र का मामला शुरू हो गया।

तीनों—

क्या ? अच्छा !

[तीनों ऐसी बातों की तरफ से उदासीनता दिखलाना चाहते हैं पर कुछ असफल-से हो रहे हैं।]

पहला—

श्रीचंद ने इनके बारे में खूब कहा।

[हँसता है। सब उसकी तरफ देखकर सुनना चाहते हैं।]

पहला—

(कोट का कालर ठीक करते हुए) मेरे साथ कमिश्नर से मिलने...उन्होंने मेरठ की बात चलाई। आप छूटते ही हिन्दुस्तानी में—हिन्दुस्तानी में बोले—अरे साहब, इनको तो ऐसे ही छोड़ देना चाहिये, यह तो हम लोगों के खिलौने हैं।

[तीनों फैशनेबल हँसी हँसते हैं, युवक भी उसमें शामिल होता है।]

दूसरा—

हर देश, हर सरकार के सामने समस्या सिर्फ यही है कि किस तरह उसके कर कम-से-कम किये जा सकते हैं। आप कर कम कर दीजिये, प्रजा अपने-आप सम्पन्न होगी।

पहला—

हम लोगों-सा कोई वेसरोकार आदमी रूस जाकर देखे कि इन शरीफ़ों ने वहाँ क्या कर दिखाया है कि दुनिया-भर को रूस के सामने हेय समझते हैं!

तीसरा—

यानी, खुदा तक को!

[फिर तीनों ऊबी-सी हँसी हँसते हैं। बाहर कुछ खटका सा होता है। सब लोग बाहर की तरफ देखते हैं। पहले सीन का परिचित पुरुष संतोष और लापरवाही से आता है।]

पुरुष—

(अपना हैट और डंडा एक खाली मेज़ पर रखते हुए) तो तुम लोग सिर्फ़ इंतज़ार कर रहे थे, ब्रिज खत्म कर दिया !

दूसरा आदमी—

(कमरे के बीच में आते हुए) आज सहाय फिर हार गये ?

पुरुष—

(हँसता हुआ) सहाय, तुम बड़े हरैले हो !

[अब सब अपनी जगहों से उठकर कमरे के बीच में आ गये हैं ।]

पहला—

जीत तो सब तुम्हारे हिस्से में पड़ी है ।

पुरुष—

अरे भई, क्या जीत क्या हार । यहाँ तो इसका कभी सपने में भी खयाल नहीं करते । हम तो ईमानदारी से जीना जानते हैं । मैं फिर कहता हूँ, जीवन एक कला है और सब से बड़ी कला ।

तीसरा—

(जम्हाई लेता हुए) चलो भई बड़ी देर हो गई । (सब घड़ी की तरफ देखते हैं, पुरुष फिर अपनी सोने की घड़ी निकालता है और उसे पोंछता है) चलो, घर तक छोड़ना पड़ेगा ।

[तीनों भीतर जाकर अपना अपना हैट लेते हैं, केवल युवक नंगे सिर है ।]

पहला—

यह चौकीदार न जाने कहाँ मर जाता है।

दूसरा—

मर जाता है ? क्या खूब ? क्या नई पत्नी कर लाया है ? ज़रा सोचो, नई पत्नी !

[सब जवानों की तरह हँसते हैं, सिर्फ युवक कुछ झेंपा-झेंपा-सा है और सबसे पीछे बाहर जाता है। बाहर बरामदे से दो या तीन बार आवाज़ आती है, 'चौकीदार !' फिर मोटरों के स्टार्ट होने की और फिर खामोशी। स्टेज पर अँधेरा हो जाता है, पर बीच में दो या तीन बार रोशनी होती है और एक किसानों का-सा बुझा हुआ चेहरा लिये चौकीदार मेज़ झाड़ता और जले हुए सिगरेट बीनता हुआ दिखलाई देता है।]

तीसरा दृश्य

[पहले सीन के कमरे का बरामदा, लम्बा और साधारण से ज़रा ऊँचा। खम्भों के पास बड़े-बड़े पाम रखे हैं, खम्भों पर बेलें भी फैली है, दरवाज़े सब बन्द हैं, जिनके सामने तीन-चार बेमेल कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं। सीढ़ियों पर एक बड़ा झबरा कुत्ता लेटा है। दृश्य के शुरू में कोई आदमी नहीं दिखलाई देता पर तत्काल ही गृहस्वामी और युवक जो क्लब से आ रहे हैं, सीढ़ियों पर चढ़ते दिखलाई देते हैं। कुत्ता सिर उठाकर धीमी जानकारी से गुर्राता है, फिर पूँछ हिलाता हुआ पीछे पीछे आकर बरामदे में लेट जाता है। स्टेज पर कम से कम रोशनी है।]

पुरुष—

(मेहनत से चढ़ते हुए) तो यह कहिये ! ठाकिये...

[जेब टटोलता है]

[फिर एक बारगी सीढ़ियों से उतर कर बंगले के पीछे की तरफ जाता है, युवक वहीं खड़ा होकर उसकी ओर उत्सुकता से देखकर मुस्करा रहा है, शीघ्र वह फिर वापस आ जाता है और उतावली से जेब टटोल रहा है।]

पुरुष—

अब यह नहीं पता, मेरी पत्नी चाभी मुझे दे गई, या कहीं रख गई। नौकर......मैं कहता हूँ कि मेरी ज़िन्दगी में अगर कोई सुर बेसुरा है तो यह नौकर। छुट्टी—छुट्टी—छुट्टी ! रोज़-रोज़ इनको छुट्टी चाहिये, कम्बख्त यह नहीं जानते......

[युवक सहसा एक कुर्सी खींचकर बैठ जाता है। पुरुष स्विच टटोलकर बत्ती जला देता है और फिर दूसरी कुर्सी पर ठीक युवक के सामने बैठ जाता है।]

पुरुष—

(एकबारगी हँसता हुआ) अगर स्विच कमरे के भीतर होता तो लुत्फ़ आ जाता !

युवक—

खैर, यहाँ भी तो आराम से बैठे हैं।

पुरुष—

हाँ, हाँ; ९–३० बजा है, (घड़ी निकालता है और उसे

पोंछता है) ९-२७, खैर, मेरी पत्नी यहाँ १०-३० तक आ जायेगी। खाना वह साथ ही लायेगी। (जम्हाई लेता है) और कहिये।

युवक—

(उत्साह से) मुझे कोठी तो खैर मिल गई...

पुरुष—

(जूते को फटफटाते) खैर, कोठी-ओठी तो है, आपने यह नहीं बताया कि आपने शादी क्यों नहीं की ?

युवक—

(कठिनता से) नहीं ही की—नहीं का कोई कारण तो है नहीं।

पुरुष—

(मुस्कराता है) मैं सच कहता हूँ, मैं आप जवान आदमियों को देखकर कई बार बहुत खुश होता हूँ।

युवक—

(जैसे इसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं है) जी हाँ !

[हँसता है।]

पुरुष—

(सँभलकर) नहीं। मैं आपसे दिल्लगी नहीं कर रहा हूँ। आप लोग हमसे एक पीढ़ी आगे हैं, पर अगर आपसे हिसाब मांगा जाय तो आपके पास क्या है ? आप मुझे बतलाइये, आप लोगों ने दुनिया को क्या दिया ? मैं वैज्ञानिक आविष्कारों की बात नहीं करता, उसकी

तो एक पूरी स्कीम है जिसमें पीढ़ियों और समाज का कोई दखल ही नहीं है, वह तो प्रकृति धीरे-धीरे अपने आपको पूरा कर रही है। मैं जानता हूँ, आप मेरे विचारों को दाकियानूसी समझ कर मन ही मन हँस रहे हैं; लेकिन भाई जान, आपने अपने नये विचारों से कौन-से तीर मारे हैं, आप बताइये।

युवक—

ज़िक्र तो शादी का था?

पुरुष—

हाँ, हाँ शादी को ही ले लीजिये। आप मानते हैं कि हर एक आदमी को जाति की ज़िन्दगी में दाखिल होना ज़रूरी है। जैसा प्रायः कहता हूँ कि दुनिया साझे की दुकान है और हर एक बालिग़ आदमी का कर्तव्य है कि उसका साझीदार हो। अगर इसके लिए कोशिश में आप अपनी जान नहीं खपा देते तो आप मनुष्य कहलाने का कोई हक़ नहीं रखते। (उत्तेजित होकर) मैं कहता हूँ, सब पुस्तकें ग़लत हैं, सब झूठी हैं!

युवक—

मैंने तो शादी नहीं की—नहीं की कि मैं शायद कभी भी औरत का दिमाग़......

पुरुष—

भाईजान, शादी एक गहरी समस्या है, आप उसके साथ खिलवाड़ नहीं कर सकते। मैं पूछता हूँ, आप एक फैक्टरी में तो

हर तरह का विज्ञान, कानून, विशिष्ट ज्ञान लगाते हैं, फिर क्या कारण है कि जीवन को ऐसे परमात्मा के भरोसे छोड़ दिया जाय कि उसमें आदमी की सस्ती से सस्ती और निकम्मी से निकम्मी शक्तियां ही सिर्फ काम में लाई जायँ ! आप कहते हैं, मैं औरत को समझ नहीं पाता। जनाब, यह सब कोरी बातें हैं, बातें ! समझने की क्या ज़रूरत है ? मशीन की एक पुली दूसरी पुली को नापने जोखने, समझने नहीं जाती। स्त्री-पुरुष तो जीवन की मशीन के दो पुरज़े हैं—दो !

युवक—

यह फैक्ट्री और मशीन की एक ही रही !

पुरुष—

नहीं साहब, आप मुझे देखिये, मेरी पहली पत्नी थी। कम्बख्त को हमेशा मुझसे शिकायत रही, लेकिन उसकी बीमारी में जब मैं प्रतिक्षण उस के सिरहाने रहा तो मेरा नाम रटती हुई मरी। अब यह मेरी दूसरी पत्नी है। हमारे बच्चे नहीं, यानी इस पत्नी के। हम लोग क्लबों में साथ-साथ नहीं जाते, हफ्ते में एक बार सिनेमा देखते हैं; पहाड़, जङ्गल जाने का मेरे पास वक्त नहीं, पर हम लोग बेहद खुश हैं—कभी हम में कोई भेद-भाव हुआ ही नहीं। मैं कहना चाहता था कि हम दोनों ने अपनी-अपनी जगह को समझ लिया है और वहाँ हम लोग अडिग हैं। वह बीमार पड़ती है, मैं डाक्टरों से घर नहीं भर देता; मैं बीमार पड़ता हूँ, वह रोती-धोती नहीं। मैं क्या

कहूँ, मैं जानता हूँ, इस वक्त मेरी पत्नी स्टेशन के बुकस्टाल पर कौन-सी किताब देख रही है। मैं जानता हूँ, वह स्टेशन पर गाड़ी से दस मिनट पहले पहुँच जाती है।

युवक—

पर मान लीजिये, मशीन का एक पुरज़ा बिगड़ जाय।

पुरुष—

(हँसता हुआ) तो पुरज़ा बदल डालिये, स्वयं बदल जाइये। किताबें, मैं आप को बताऊँगा, किताबें क्या हैं। मैंने रूई के व्यापार पर एक छोटी-सी पुस्तक लिखी, मैंने सब वही बातें लिखीं जो लोग रोज़ सोचते थे और जिनकी चर्चा करते रहते थे। नतीजा यह हुआ कि किताब की धूम मच गई; पर उन्हीं उसूलों को जिनकी मैंने वकालत की, काम लाने की बात मैं स्वप्न में भी नहीं सोचता।

[पुरुष सहसा यह आशा कर के कि युवक कुछ कहेगा, चुप हो जाता है। युवक सिर झुकाये हुए ख़ामोश है। कुत्ता इतना शोरगुल सुनकर पास आकर खड़ा हो गया है। कुछ देर के लिए खामोशी हो जाती है।]

युवक—

(सिर उठाकर) फैक्ट्री, पुरज़ा, वाकई यह खूब रही!

[पुरुष कुछ कहने के लिए तैयार होता है, पर सहसा फाटक खटकता है और कुत्ता भौंकते हुए दौड़ता है। वह कुत्ते को बुलाता है और बरामदे के किनारे खड़े होकर ज़ोर से पुकारता है—कौन है ? और फिर कुत्ते को पुकारता है।

एक चपरासी हाथ में बाइसिकल थामे आता है और सलाम करके जेब में से एक लिफ़ाफ़ा निकालकर देता है और फिर सलाम करके खड़ा हो जाता है]

पुरुष—

क्या है, तुम कौन हो ? (लिफ़ाफ़ा लेकर अपनी घड़ी की चेन के चाकू से उसे खोलता है—रोशनी की तरफ़ जाता है) ऐं !

चपरासी—

मैं निहाल साहब का ड्राइवर हूँ, मेम साहब ने कहलाया है वह कल आयेंगी।

पुरुष—

(ख़त पढ़ना छोड़कर) कल आयेंगी ? ऐं ! तुझे क्या मालूम...

चपरासी—

सब मेम साहब वहाँ रहेंगे, मोटर वापस कर दी, मुझसे कहा—

पुरुष—

(टहलते हुए उतावली से) और खाना, मकान...और कार मेरी मिलखीराम के पम्प पर पड़ी है ।

[चपरासी फिर सलाम करता है और चल देता है, थोड़ी दूर चलके कहता है—]

चपरासी—

हजूर, आपका कुत्ता बड़ा पानीदार है । अंग्रेज़ी है ?

पुरुष—

(हताश भाव से) आखिर—आखिर, हुँ...

युवक—

(उठते हुए) आइये, मेरे होटल में आइये, आपकी फैक्ट्री में तो आज स्ट्राईक हो गई ।

पुरुष—

मैं कहता हूँ, मेरी कार मिलखीराम के पम्प पर खड़ी है—

[फिर खत बत्ती के नीचे ले जाकर पढ़ता है ।]

ड्राप

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

श्री 'अश्क' पंजाब निवासी कुशल कहानी लेखक हैं। हाल में ही आपने नाटक भी लिखने आरम्भ किए हैं और इन में आपको काफ़ी सफलता मिली है। आयु आपकी अभी २६, २७ वर्ष की है। जालन्धर आपका जन्मस्थान है। वहीं १६३१ में बी० ए० पास करके आप अध्यापक हो गए थे पर चार छः महीने में ही वहाँ से ऊब कर लाहौर चले आए।

आप पहले उर्दू में लिखते थे और लाहौर आकर आपने कुछ उर्दू पत्रों के सम्पादन विभाग में काम भी किया। कालेज के दिनों में ही 'नौरत्न' नामक एक उर्दू कहानी संग्रह आपका निकला था। १६३२ में आपकी उर्दू कहानियों का दूसरा संग्रह निकला, जिसका विस्तृत परिचय स्व० प्रेमचन्द ने लिखा। उसी वर्ष आपकी पहली हिन्दी कहानी स्व० प्रेमचन्द ने 'हंस' में छापी। तब से आप बराबर हिन्दी में लिख रहे हैं। जीवन संघर्ष ने आपको कभी चैन से बैठने नहीं दिया। १६३४ में आपने कानून लेकर एल, एल, बी० पास किया पर १६३६ में लम्बी बीमारी के बाद आपकी पत्नी का देहांत हो

गया, फिर आपने प्रेक्टिस नहीं की। तभी से एक चित्त होकर आप साहित्य सेवा कर रहे हैं। अभी हाल में आप का 'जय पराजय' 'स्वर्ग की झलक' नामक नाटक भी प्रकाशित हुए हैं जिन का हिन्दी जगत में आदर हुआ है।

जीवन की कटु अनुभूतियों ने आपकी रचनाओं में एक विशेष दर्द भर दिया है। आपकी भाषा सरस, मुहावरेदार और प्रभावशाली होती है। व्यावहारिकता आपकी भाषा का सब से बड़ा गुण है। जो हवा में पतंग की तरह स्वाभाविक रूप से बढ़ती है। आपके पात्र अपने स्वाभाविक आचरण, मधुर मनोरंजन की ओर जितना ध्यान देते हैं उतना वास्तविकता की ओर नहीं दे पाते। इतने पर भी उनमें एक वेग रहता है जो पाठक को सदा सतर्क एवं आकृष्ट किये रहता है। इधर कुछ दिनों से आप ने हिन्दी में कविता भी लिखना आरम्भ किया है। आपका एक कविता सग्रह भी हाल में प्रकाशित हुआ है।

लक्ष्मी का स्वागत

पात्र

रौशन	: एक शिक्षित युवक
सुरेन्द्र	: उसका मित्र
भाषी	: उसका छोटा भाई
पिता	: रौशन का बाप
मा	: रौशन की माता
अरुण	: रौशन का बीमार बच्चा
डाक्टर	:

इस नाटक का 'रेडियो संस्करण' २३ जुलाई १६३८ को आल इंडिया रेडियो के लाहौर स्टेशन से ब्राडकास्ट किया गया ।

लक्ष्मी का स्वागत

स्थान—

ज़िला जालन्धर के इलाके में मध्यम श्रेणी के एक मकान का दालान।

समय—

नौ-दस बजे सुबह।

[दालान में सामने की दीवार से मेज़ लगी है, जिस के इस ओर एक पुरानी कुर्सी पड़ी है; मेज़ पर बच्चों की किताबें बिखरी पड़ी हैं।

दीवार के दायें कोने में एक खिड़की है, जिस पर मामूली छींट का पर्दा लगा है, बायें कोने में एक दरवाज़ा है, जो सीढ़ियों में खुलता है।

दाईं दीवार में एक दरवाज़ा है जो उस

कमरे में खुलता है, जहाँ इस वक्त रौशन का बच्चा अरुण बीमार पड़ा है।

दीवारों पर बिना फ्रेम के सस्ती तस्वीरें मेखों से जड़ी हुई हैं। छत पर काग़ज का एक पुराना फ़ानूस लटक रहा है।

पर्दा उठने पर सुरेन्द्र खिड़की से बाहर की तरफ देख रहा है। बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही है। हवा की साँय-साँय और वर्षा के थपेड़े सुनाई देते हैं।

कुछ क्षण बाद खिड़की का पर्दा छोड़कर कमरे में घूमता है, फिर जाकर खिड़की के पास खड़ा हो जाता है और पर्दा हटाकर बाहर देखता है।

बीमार के कमरे से रौशनलाल दाखिल होता है।]

रौशन—

(दरवाज़े को धीरे से बन्द करके) डाक्टर अभी नहीं आया ?

सुरेन्द्र—

नहीं।

रौशन—

वर्षा हो रही है ?

सुरेन्द्र—

मूसलाधार ! इन्द्र का क्रोध अपने यौवन पर है ।

रौशन—

शायद ओले पड़ रहे हैं ।

सुरेन्द्र—

हाँ, ओले भी पड़ रहे हैं ।

रौशन—

भाषी पहुँच गया होगा ?

सुरेन्द्र—

हाँ, पहुँच ही गया होगा । यह वर्षा और ओले ! नदियां बह रही होंगी बाज़ारों में !

रौशन—

लेकिन अब तक आ जाना चाहिये था उन्हें । (स्वयं बढ़कर खिड़की के पर्दे को हटाकर देखता है, फिर पर्दा छोड़कर वापस आ जाता है—घुटे घुटे स्वर में) अरुण की तबीयत गिर रही है ।

सुरेन्द्र—

(चुप)

रौशन—

(उसी आवाज़ में) उसकी साँस जैसे हर घड़ी रुकती जा रही है, उसका गला जैसे बन्द होता जा रहा है, उसकी आँखें खुली हैं पर वह कुछ कह नहीं सकता, बेहोश सा, असहाय सा, चुपचाप

बिटर-बिटर तक रहा है। आँखें लाल और शरीर गर्म। सुरेन्द्र, जब वह साँस लेता है तो उसे बड़ा ही कष्ट होता है। (दीर्घ निश्वास) क्या होने को है सुरेन्द्र ?

सुरेन्द्र—

हौसला करो ! अभी डाक्टर आ जायगा। देखो, दरवाज़े पर किसी ने दस्तक दी है।

[दोनों कुछ क्षण तक सुनते हैं। हवा की साँय-साँय।]

रौशन—

नहीं, कोई नहीं, हवा है।

सुरेन्द्र—

(सुनकर) यह देखो, फिर किसी ने दस्तक दी।

[रौशन बढ़कर खिड़की में देखता है, फिर वापस आ जाता है।]

रौशन—

सामने के मकान का दरवाज़ा खटखटाया जा रहा है।

[बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र कुर्सी से पीठ लगाये छत में हिलते हुए फ़ानूस को देख रहा है।]

रौशन—

(घूमते हुए जैसे अपने आप) यह मामूली बुखार नहीं, यह गले की तकलीफ़ साधारण नहीं, (सहसा सुरेन्द्र के पास रुककर) मेरा तो दिल डर रहा है सुरेन्द्र, कहीं अपनी मा की तरह अरुण भी तो मुझे

धोखा न दे जायगा ? (गला भर आता है) तुमने उसे नहीं देखा, साँस लेने में उसे कितना कष्ट हो रहा है ?

[हवा की साँय-साँय और वर्षा के थपेड़े ।]

—यह वर्षा, यह आँधी, यह मेरे मन में हौल पैदा कर रहे हैं। कुछ अनिष्ट होने को है । प्रकृति का यह भयानक खेल, मौत की यह आवाज़ें......

[बिजली ज़ोर से कड़क उठती है । बादल गरजते हैं और मकानों के किवाड़ खड़खड़ा उठते हैं ।]

रसोई से मा की आवाज़—

रौशी दरवाज़ा खोल आओ । देखो शायद डाक्टर आया है ।

[रौशन सुरेन्द्र की ओर देखता है ।]

सुरेन्द्र—

मैं जाता हूँ अभी ।

[तेज़ी से जाता है । रौशन बेचैनी से कमरे में घूमता है । सुरेन्द्र के साथ डाक्टर और भाषी प्रवेश करते हैं । भाषी के हाथ में इंजेक्शन का सामान है ।]

डाक्टर—

क्या हाल है बच्चे का ?

[बरसाती उतारकर खूँटी पर टाँगता है और रूमाल से मुँह पोंछता है ।]

रौशन—

आपको भाषी ने बताया होगा डाक्टर साहब। मेरा तो जैसे हौसला टूट रहा है। कल सुबह उसे कुछ ज्वर हुआ और साँस में तकलीफ़ हो गई और आज तो वह बेहोश-सा पड़ा, जैसे अन्तिम साँसों को जाने से रोक रखने का प्रयास कर रहा है।

डाक्टर—

चलकर देखता हूँ।

[सब बीमार के कमरे में चले जाते हैं। बाहर दरवाज़े के खटखटाने की आवाज़ आती है। मा तेज़ी से प्रवेश करती है।]

मा—

भाषी! भाषी!

[बीमार के कमरे से भाषी आता है।]

मा—

देखो भाषी बाहर कौन दरवाज़ा खटखटा रहा है। (आँखों में चमक आ जाती है) मेरा तो ख़याल है, वही लोग आये हैं। मैंने रसोई की खिड़की से देखा है। टपकते हुए छाते लिए और बरसातियाँ पहने......

भाषी—

वही कौन?

मा—

वही, जो सरला के मरने पर अपनी लड़की के लिए कह रहे थे। बड़े भले आदमी हैं। सुनती हूँ, सियालकोट में उनका बड़ा काम है। इतनी वर्षा में भी......

[ज़ोर-ज़ोर से कुण्डी खटखटाने की निरन्तर आवाज़ ! भाषी भागकर जाता है, मा खिड़की में जा खड़ी होती है। बीमार के कमरे का दरवाज़ा खुलता है सुरेन्द्र तेज़ी से प्रवेश करता है।]

सुरेन्द्र—

भाषी कहाँ है ?

मा—

बाहर कोई आया है, कुण्डी खोलने गया है।

[फिर तेज़ी से वापस चला जाता है। मा एक बार पर्दा उठाकर खिड़की से झाँकती है, फिर खुशी-खुशी कमरे में टहलती है। भाषी दाखिल होता है।]

मा—

कौन हैं ?

भाषी—

शायद वही हैं। नीचे बिठा आया हूँ, पिता जी के पास, तुम चलो।

मा—

क्यों ?

भाषी—

उनके साथ एक स्त्री भी है।

[मा जल्दी-जल्दी चली जाती है । सुरेन्द्र कमरे का दरवाज़ा ज़रा-सा खोलकर देखता है और आवाज़ देता है—]

सुरेन्द्र—

भाषी !

भाषी—

हाँ !

सुरेन्द्र—

इधर आओ ।

[भाषी कमरे में चला जाता है । कुछ क्षण के लिए खामोशी । केवल बाहर मेंह बरसने और हवा के थपेड़ों से किवाड़ों के खड़खड़ाने का शोर, कमरे में फ़ानूस के हिलने की सरसराहट । डाक्टर, सुरेन्द्र, रौशन और भाषी बाहर आते हैं ।]

रौशन—

डाक्टर साहब, अब बताइये ।

डाक्टर—

(अत्यधिक गम्भीरता से) बच्चे की हालत नाजुक है ।

रौशन—

बहुत नाजुक है ?

डाक्टर—

हाँ !

रौशन—

कुछ नहीं हो सकता ?

डाक्टर—

परमात्मा के घर कुछ कमी नहीं, लेकिन आपने बहुत देर कर दी । खुनाक (डिपथीरिया *) में तत्काल डाक्टर को बुलाना चाहिए ।

रौशन—

हमें मालूम ही नहीं हुआ डाक्टर साहब, कल शाम को इसे बुखार हो आया, गले में भी इसने बहुत कष्ट महसूस किया । मैं डाक्टर जीवाराम के पास ले गया—वही जो हमारे बाज़ार में हैं—उन्होंने गले में आयोडीन-ग्लिसरीन पेंट कर दी और फीवर-मिक्स्चर बना दिया, दो खुराकें दीं, इसकी हालत तो पहले से भी खराब हो गई । शाम को यह कुछ बेहोश-सा हो गया । मैं भागा-भागा

---

* डिपथीरिया—गले का संक्रामक रोग जिसमें साँस बन्द हो जाने से मृत्यु हो जाती है ।

आप के पास गया, पर आप मिले नहीं, तब रात को भाभी को भेजा, फिर भी आप न मिले। और फिर यह झड़ी लग गई।— ओले, आँधी और झक्कड़! जैसे प्रलय के बन्धन ढीले हो गए हों।

[बाहर हवा की साँय-साँय सुनाई देती है। डाक्टर सिर नीचा किए खड़ा है, रौशन उत्सुक नज़रों से उसकी ओर ताक रहा है, सुरेन्द्र मेज़ के एक कोने पर बैठा छत की ओर ज़ोर-ज़ोर से हिलते फानूस को देख रहा है।]

डाक्टर—

(सिर उठाता है) मैंने इंजेक्शन दे दिया है। भाभी ने जो लक्षण बताये थे उन्हें सुनकर मैं बचाव के तौर पर इंजेक्शन का सामान ले आया था और मेरा खयाल ठीक निकला। भाभी को मेरे साथ भेज दो, मैं इसे नुसखा लिख देता हूँ, यहीं बाज़ार से दवाई बनवा लेना, मेरी जगह तो दूर है। पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के बाद हलक़ में दवाई की दो-चार बूँदें, और एक घंटे में मुझे सूचित करना। यदि एक घंटे तक यह ठीक रहा तो मैं एक इंजेक्शन और कर जाऊँगा। कोई दूसरा इलाज भी तो नहीं!

रौशन—

डाक्टर साहब, (आवाज़ भर आती है।)

डाक्टर—

घबराने से काम न चलेगा, सावधानी से उसकी तीमारदारी करो, शायद.........

रौशन—

मैं अपनी तरफ़ से कोई कसर न उठा रखूँगा। सुरेन्द्र, देखो तुम मेरे पास रहना, जाना नहीं, यह घर इस बच्चे के लिए वीराना है। यह लोग इसका जीवन नहीं चाहते, बड़ा रिश्ता पाने के मार्ग में इसे रोड़ा समझते हैं। इसकी मृत्यु चाहते हैं,.........

सुरेन्द्र—

क्या कहते हो रौशन.........

डाक्टर—

रौशनलाल.........

रौशन—

आप नहीं जानते डाक्टर साहब! यह सब लोग हृदय-हीन हैं, आपको मालूम नहीं। इधर मैं अपनी पत्नी का दाह-कर्म करके आया था, उधर ये दूसरी जगह शादी के लिए शगुन लेने की सोच रहे थे!

सुरेन्द्र—

यह तो दुनिया का व्यवहार है भाई!

रौशन—

दुनिया का व्यवहार—इतना शुष्क, इतना निर्मम, इतना क्रूर! नहीं जानता कि जो मर जाती है, वह भी किसी की लड़की होती है, किसी के लाड़ प्यार में पली होती है, फिर............(डाक्टर को जाते देखकर) आप जा रहे हैं डाक्टर साहिब—(भापी से) देखो भाषी जल्दी आना, बस, जैसे यहीं खड़े हो।

[डाक्टर और भाषी चले जाते हैं ।]

रौशन—

सुरेन्द्र, क्या होने को है ? क्या अरुण भी मुझे सरला की भाँति छोड़कर चला जायगा ! मैं तो उसे देखकर सरला का ग़म भूल चुका था, लेकिन अब...अब...

[हाथों से चेहरा छिपा लेता है ।]

सुरेन्द्र—

(उसे धकेलकर कमरे की ओर ले जाता हुआ) पागल न बनो, चलो, उसके घर में क्या कमी है ? वह चाहे तो मुर्दों में जान आ जाए, मरनासन्न उठ कर खड़े हो जाएँ ।

रौशन—

(भर्राये गले से) मुझे उस पर कोई विश्वास नहीं रहा । उसका कोई भरोसा नहीं—क्रूर, कठिन और निर्दयी ! उसका काम सते हुओं को और सताना है, जले हुए को और जलाना है ।

सुरेन्द्र—

दीवाने न बनो, चलो, उसके सिरहाने चलकर बैठो ! मैं देखता हूँ, भाषी अभी क्यों नहीं आया ?

[उसे दरवाज़े के अन्दर धकेल कर मुड़ता है ।
दाईं ओर के दरवाज़े से मा दाखिल होती है ।]

मा—

किधर चले ?

सुरेन्द्र—

ज़रा भाभी को देखने जा रहा था।

मा—

क्या हाल है अरुण का ?

सुरेन्द्र—

उसकी हालत ख़राब हो रही है।

मा—

हमने तो बाबा बोलना ही छोड़ दिया है। ये डाक्टर जो न करें थोड़ा है। बहू के मामले में भी तो यही बात हुई थी। अच्छी-भली हकीम की दवा हो रही थी, आराम आ रहा था, जिगर का बुखार ही तो था, दो-दो वर्ष भी रहता है; पर यह डाक्टरों को लाये बिना न माना। और उन्होंने दे दिया दिक़ का फ़तवा, हमने तो भाई इसीलिए कुछ कहना-सुनना छोड़ दिया है। आखिर मैंने भी तो पाँच पाँच बच्चे पाले हैं। बीमारियाँ हुईं, कष्ट हुए, कभी डाक्टरों के पीछे भागी-भागी नहीं फिरी। क्या बताया डाक्टर ने ?

सुरेन्द्र—

डिपथीरिया !

मा—

क्या ?.........

सुरेन्द्र—

बड़ी खतरनाक बीमारी है माजी ! अच्छा भला आदमी चन्द

घंटों के अन्दर खत्म हो जाता है।

मा—

राम-राम ! तुम लोगों ने क्या कुछ-का-कुछ बना डाला ! उसे ज़रा ज्वर हो गया है, छाती जम गई होगी, बस मैं घुट्टी दे देती तो ठीक हो जाता, लेकिन मुझे कोई हाथ लगाने दे तब न ! हमें तो वह कहता है, बच्चे से प्यार ही नहीं।

सुरेन्द्र—

नहीं नहीं, यह कैसे हो सकता है ? आपसे अधिक वह किसे प्यारा होगा !

[चलने को उद्यत होता है।]

मा—

सुनो !

[सुरेन्द्र रुक जाता है।]

मा—

मैं तुमसे एक बात करने आई थी, तुम उसके मित्र हो न, उसे समझा सकते हो।

सुरेन्द्र—

कहिए ?

मा—

आज वे फिर आये हैं।

सुरेन्द्र—

वे कौन ?

मा—

सियालकोट के एक व्यापारी हैं। जब सरला का चौथा हुआ था तो उस दिन रौशी के लिए अपनी लड़की का शगुन लेकर आये थे। पर उसे न जाने क्या हो गया है, किसी की सुनता ही नहीं, सामने ही न आया। हार कर बेचारे चले गये। रौशी के पिता ने उन्हें एक महीने बाद आने को कहा था, सो पूरे एक महीने बाद वे आये हैं।

सुरेन्द्र—

माजी...

मा—

तुम जानते हो बच्चा, दुनिया जहान का यह क़ायदा ही है। गिरे हुए मकान की नींव पर ही दूसरा मकान खड़ा होता है। रामप्रताप ही को देख लो, अभी दाह-कर्म-संस्कार के बाद नहाकर साफ़ा भी न निचोड़ा था कि नकोदरवालों ने शगुन दे दिया, एक महीने के बाद विवाह भी हो गया और अब तो सुनते हैं, बच्चा भी होने वाला है।

सुरेन्द्र—

माजी, रामप्रताप और रौशन में कुछ अन्तर है।

माता—

यही कि वह माता-पिता का आज्ञाकारी है, और यह पढ़-लिख

कर अवज्ञा करना सीख गया है। बेटा, अभी तो चार नाते आते हैं, फिर देर हो गई तो इधर कोई मुँह भी न करेगा। लोग सौ-सौ बातें बनायेंगे, सौ-सौ लांछन लगायेंगे और फिर ऐसा कौन क्वाँरा है...

सुरेन्द्र—

माजी, तुम्हारा रौशन बिन-ब्याहा न रहेगा, इसका मैं यक़ीन दिलाता हूं।

मा—

यह ठीक है बेटा, पर अब यह शरीफ़ आदमी मिलते हैं। घर अच्छा है, लड़की अच्छी है, सुशील है, सुन्दर है, सुशिक्षित है। और सब से बढ़कर यह है कि यह लोग बड़े भले हैं। लड़की की बड़ी बहन से अभी मैंने बातें की हैं। ऐसी सलीक़े वाली है कि क्या कहूँ। बोलती है तो फूल झड़ते हैं। जिसकी बड़ी बहन ऐसी है, वह स्वयं कैसे अच्छी न होगी?

सुरेन्द्र—

माजी, अरुण की तबीयत बहुत खराब है। जाकर देखो तो मालूम हो।

मा—

बेटा, ये भी तो इतनी दूर से आये हैं। इस आँधी और तूफ़ान में, कैसे उन्हें निराश लौटा दूँ?

सुरेन्द्र—

तो आखिर आप मुझ से क्या चाहती हैं?

मा—

तुम्हारा वह मित्र है, उससे जाकर कहो कि ज़रा दो-चार मिनट जाकर उनसे बात कर ले। जो कुछ वे पूछते हों, उन्हें बता दे, इतने में मैं लड़के के पास बैठती हूँ।

सुरेन्द्र—

मुझ से यह नहीं हो सकता माजी, बच्चे की हालत ठीक नहीं, बल्कि नाजुक है; आप नहीं जानतीं, वह उसे कितना प्यार करता है; भाभी के बाद उसका सब ध्यान उसी में केन्द्रित हो गया है और इस वक्त जब बच्चे की हालत ठीक नहीं है, मैं उससे यह सब कैसे कहूँ?

[बीमार के कमरे का दरवाज़ा खुलता है।
रौशन दाखिल होता है। बाल बिखरे हुए,
चेहरा उतरा हुआ, आँखें फटी-फटी सी।]

रौशन—

सुरेन्द्र, तुम अभी यहीं खड़े हो? परमात्मा के लिए जाओ, जल्दी जाओ! मेरी बरसाती ले जाओ, नीचे से छतरी ले जाओ, देखो भाषी अभी आया क्यों नहीं? अरुण तो......

सीढ़ियों से—

मैं आ गया भाई साहब!

[भाषी दवाई की शीशी लिए दाखिल होता है।
सुरेन्द्र और भाषी बीमार के कमरे में जाते हैं।
मा रौशन के समीप आती है।]

मा—

क्या बात है, घबराये हुए क्यों हो ?

रौशन—

मा, उसे डिपथीरिया हो गया है।

मा—

मुझे सुरेन्द्र ने बताया। (असन्तोष से सिर हिलाकर) तुम लोगों ने मिल-मिलाकर...

रौशन—

क्या कह रही हो ? तुम्हें आप अगर किसी बात का पता नहीं तो दूसरों को तो कुछ करने दो।

मा—

चलो, मैं चलकर देखती हूँ।

[बढ़ती है।]

रौशन—

(रास्ता रोकता है) नहीं, तुम मत जाओ। उसे बेहद तकलीफ़ है, उसे साँस मुश्किल से आती है, उसका दम उखड़ रहा है, तुम कोई घुट्टी-बुट्टी की बात करोगी।

[जाना चाहता है।]

मा—

सुनो !

[रौशन मुड़ता है। मा असमंजस में है।]

रौशन—

कहो !

मा—

चुप।

रौशन—

जल्दी-जल्दी कहो मुझे जाना है।

मा—

वे फिर आये हैं।

रौशन—

वे कौन ?

मा—

वही सियालकोट वाले !

रौशन—

(क्रोध से) उनसे कहो, जहां से आये हैं वहीं चले जायँ।

[जाना चाहता है।]

मा—

रौशी !

रौशन—

मैं नहीं जानता, मैं पागल हूँ या आप ! क्या, आप मेरी सूरत नहीं देखते क्या आपको इस पर कुछ लिखा दिखाई नहीं देता शादी, शादी, शादी ! क्या शादी ही दुनिया में सब कुछ है ! घर

में बच्चा मर रहा है और तुम्हें शादी की सूझ रही है। आखिर आप लोगों को हो क्या गया है ? क्या वह मेरी पत्नी न थी क्या वह......

मा—

शोर मत मचाओ ! हम तुम्हारे ही फ़ायदे की बात कर रहे हैं, रामप्रताप...

रौशन—

(चीखकर) तुम रामप्रताप को मुझसे मिलाती हो ! अनपढ़ अशिक्षित, गँवार ! उसके दिल कहाँ है ? महसूस करने का माद्दा कहाँ है ? वह जानवर है !

मा—

तुम्हारे पिता ने भी तो पहली पत्नी की मृत्यु के दूसरे महीने ही विवाह कर लिया था......

रौशन—

वे......मा जाओ, मैं क्या कहने लगा था ?

[तेज़ी से मुड़कर कमरे में चला जाता है और दरवाज़ा खट से बन्द कर लेता है। हाथ में हुक्का लिये हुए, खँखारते खँखारते रौशन के पिता का प्रवेश।]

पिता—

क्या कहता है रौशन ?

मा—

वह तो बात भी नहीं सुनता, जाने बच्चे की तबीयत बहुत खराब है।

पिता—

(खँखारकर) एक दिन में ही इतनी क्या खराब हो गई ? मैं जानता हूँ, यह सब बहानेबाज़ी है।

ज़ोर से आवाज़ देता है—

रौशी,

[खिड़कियों पर वायु के थपेड़ों की आवाज़।]

फिर आवाज़ देता है—

रौशी,

[रौशन दरवाजा खोलकर झाँकता है। चेहरा पहले से भी उतरा हुआ है, आँखें रुँआसी-सी और निगाहों में करुणा।]

रौशन—

(अत्यन्त थके स्वर से) धीरे बोलें आप, क्या शोर मचा रहे हैं ?

पिता—

इधर आओ !

रौशन—

मेरे पास समय नहीं !

पिता—

(चीखकर) समय नहीं ?

रौशन—

धीरे बोलें आप !

पिता—

मैं कहता हूँ, वे इतनी दूर से आये हैं, तुम्हें देखना चाहते हैं, तुम जाकर उनसे ज़रा एक-दो मिनट बात कर लो।

रौशन—

मैं नहीं जा सकता !

पिता—

नहीं जा सकता !

रौशन—

नहीं जा सकता !

पिता—

तो मैं शगुन ले रहा हूँ ! इस वर्षा, आँधी और तूफ़ान में उन्हें अपने घर से निराश नहीं लौटा सकता, घर आई लक्ष्मी का निरादर नहीं कर सकता।

[रोने की तरह रौशन हँसता है।]

रौशन—

नहीं, आप लक्ष्मी का स्वागत कीजिए।

[खट से दरवाज़ा बन्द कर लेता है।]

पिता—

(रौशन की मा से) इस एक महीने में हमने कितनों को इनकार नहीं किया पर इनको कैसे न कर दें ? सियालकोट में इनकी बड़ी भारी फ़र्म है । मैंने महीने भर में अच्छी तरह पता लगा लिया है ! हज़ारों का तो इनके यहाँ लेन देन है ।

मा—

वहु की बीमारी का पूछते होंगे ?

पिता—

उन्हें शक था, पर मैं ने कह दिया, जिगर का बुखार था । बिगड़ गया ।

मा—

बच्चे को पूछते होंगे !

पिता—

हाँ, पूछते थे, मैं ने कह दिया कि बच्चा है, पर मा की मृत्यु के बाद उसकी हालत ठीक नहीं रहती, परमात्मा ही मालिक है ।

मा—

तो आप हाँ करदें ।

पिता—

हाँ, मैं तो शगुन ले लूँगा ।

[चले जाते हैं । हुक्के की आवाज़ दूर होते-होते गुम हो जाती है । मा खुशी-खुशी कमरे में घूमती है, भाषी आता है और तेज़ी

से निकल जाता है।]

मा—

भाषी !

भाषी—

मैं डाक्टर के जा रहा हूँ।

[तेज़ी से चला जाता है। बीमार के कमरे से सुरेन्द्र निकलता है।]

सुरेन्द्र—

(भरी आवाज़ में) माजी......

मा—

(घबराए स्वर में) क्या बात है ? क्या बात है ?

सुरेन्द्र—

दाने लाओ और दिये का प्रबन्ध करो !

मा—

क्या ?...

[आँखें फाड़े उसकी ओर देखती रह जाती है। हवा की साँय-साँय।]

सुरेन्द्र—

अरुण इस संसार से जा रहा है !

[फानूस टूट कर धरती पर गिर पड़ता है। मा भागकर दरवाज़े पर जाती है।]

मा—

रौशी, रौशी !

[दरवाज़ा अन्दर से बन्द है ।]

मा—

रौशी, रौशी !

रौशन—

(कमरे के अन्दर से भर्राये स्वर में) क्या बात है ?

मा—

दरवाज़ा खोलो ?

रौशन—

तुम पहले लक्ष्मी का स्वागत कर आओ !

मा—

रौशी—

रौशन—

चुप !

मा—

रौशी !

[सीढ़ियों से रौशन के पिता के हुक्का पीने और खँखारने की आवाज़ ।]

पिता—

(सीढ़ियों से ही) रौशन की मा, बधाई हो !

[पिता का प्रवेश । मा उनकी ओर
मुड़ती है ।]

पिता—

बधाई हो, मैंने शगुन ले लिया ।

[कमरे का दरवाज़ा खुलता है, मृत बालक
का शव लिये रौशन दाखल होता है ।]

रौशन—

हाँ, नाचो, गाओ, खुशियाँ मनाओ !

पिता—

हैं मर गया !

[हाथ से हुक्का गिर पड़ता है और मुँह
खुला रह जाता है ।]

मा—

मेरा लाल !

[चीख मार कर सिर थामे धम से
बैठ जाती है ।]

सुरेन्द्र—

माजी, जाकर दाने लाओ और दिये का प्रबन्ध करो !

पर्दा

———

श्री भगवती चरण वर्मा

श्री भगवतीचरण वर्मा जी का जन्म संवत् १६५४ में हुआ। आप हिन्दी के मधुर गायक-कवि और अलमस्त कलाकार हैं। आपकी कविता रहस्यवाद तथा छायावाद की मिश्रितावस्था से होकर स्थूल से सूक्ष्म की, कठोर से मधुर की ओर बढ़ रही है। आपने उपन्यास कहानियाँ तथा एकांकी नाटक भी लिखे हैं। इन सब में इनकी कवि-प्रतिभा की मोहर है। कहानियों में मानव जीवन की व्याख्या है जिस में दुखी, बेचैन, तड़पते हुए को उसकी यथार्थता की ओर खींचा गया है।

प्रस्तुत एकांकी नाटक में भी इसी प्रकार का एक रूप है। कवि और वीरों के श्रेष्ठत्व के विवाद में जीवन का प्रत्यक्ष सुख और छल छिद्र से काम लेने वाला रामेश्वर सब कुछ चुराकर चल देता है और वे सब लोग देखते रह जाते हैं। कल्पना के लोक में विचरने वाला मनुष्य प्रत्यक्ष की ठेस खाकर वास्तविकता की ओर आता है और देखता है परोक्ष की अनुभूति ही सब कुछ नहीं है। इनकी भाषा सरल सुन्दर और सुगठित होती है।

अबतक इनके मधुकण, प्रेम संगीत काव्य, चित्रलेखा, तीन वर्ष उपन्यास, इन्स्टालमेण्ट नाम से एक कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आज कल आप 'विचार' नामक साप्ताहिक पत्र के सम्पादक हैं।

सब से बड़ा आदमी

पात्र

गजाती	एक रेस्टोरॉंटका मालिक
राधे शंकर	दो दोस्त
शर्मा जी	एक स्वदेश भक्त
अहमद	एक कामरेड
रामेश्वर	एक उचक्का
मि० वर्मा	एक एडवोकेट
चिरौंजी	रेस्टोरॉं का बैरा

सब से बड़ा आदमी

[गजाती की रेस्टोराँ।

एक दुकान है सामनेवाली दीवार को ढके हुए दो अलमारियाँ कोनों से मिली रखी हैं। एक अलमारी में चीनी के बर्तन, कांटे, छुरी आदि हैं; दूसरी में शक्कर, पावरोटी आदि सजे रखे हैं। दोनों अलमारियों के बीच में एक मेज़ रखी है, जिस में शीशे के ढकने लगे हैं। मेज में केक, मिठाइयाँ आदि रखी हैं।

कमरे की दाहिनी दीवार में तीन दरवाज़े हैं जिन पर परदे पड़े हैं। ये दरवाजे सड़क पर खुलते हैं। कमरे की बायीं ओर बीचोंबीच एक दरवाजा है।

कमरे के बीचोंबीच सामने की दीवार के सामने दो लम्बी-लम्बी मेज़ें पड़ी हैं—इन

मेज़ों पर तख़्तों की जगह सीमेण्ट के टुकड़े जड़े हैं। मेज़ों के इधर-उधर कुर्सियाँ पड़ी हैं।

दाहिनी तरफ दरवाजे से मिली हुई एक मेज़ है, जिसके सामने एक कुर्सी पड़ी है। उस कुर्सी से मिली हुई दाहिने-बायें एक आराम-कुर्सी पड़ी है। आराम-कुर्सी की पीठ मेज़ की तरफ है।

गजाती साहेब आराम-कुर्सी पर लेटे हुए अख़बार पढ़ रहे हैं। कद नाटा—शरीर दुबला-पतला। स्पोर्ट शर्ट और पतलून पहने हैं, पैरों से मोजा नदारद और चप्पल पहने हैं। दाढ़ी-मूछ साफ़—उनकी उम्र २५ से ४५ तक अन्दाज़ी जा सकती है। चिरौंजी का प्रवेश बायीं ओर से।]

चिरौंजी--

बाबूजी ! (गजाती चुप) बाबूजी !

गजाती—

(अख़बार पर से नज़र उठाकर चिरौंजी की तरफ़ देखते हुए) क्यों बे !

चिरौंजी—

चाय लै जाई ?

गजाती—

हाँ ! (अखबार उठाता है)

(चिरौंजी दरवाजे तक जाता है)

गजाती—

चिरौंजी ! इधर आओ।

(चिरौंजी लौटता है।)

गजाती—

क्यों जी, आज तुमने एक रोटी में आठ स्लाइसें क्यों निकालीं, जब कि मैंने सोलह निकालने को कल कह दिया था ?

चिरौंजी—

बाबू जी !

गजाती—

(उंगलियों पर हिसाब लगाते हुए) बाबूजी-बाबूजी क्या करता है—एक--दो—तीन—सात—आठ—हाँ अभी तक आठ रोटियाँ ज्यादा खर्च हुईं। ये आठ आने तुम्हारी तनख्वाह से काटे जावेंगे।

चिरौंजी—

बाबू जी मर जायंगे।

गजाती—

अबे, बाबू जी नहीं मरेंगे--मरेगा तू !

चिरौंजी—

अबकी बाबू जी माफ करें—आगे से सोलह नहीं बत्तीस स्लाइस निकालबे !

[बाहर से आवाज़ आती है ।]

एक आवाज़—

तुम मेरी बात नहीं समझते ।

दूसरी आवाज़—

अगर तुम ठीक बात कहो, तो वह सबकी समझमें आ सकती है ।

गजाती—

(चिरौंजी से) जा बे, काम कर ।

[चिरौंजी जाता है ।]

[दाहिनी ओर से शंकर और राधे का प्रवेश । शङ्कर पोलो शर्ट और हाफ पैण्ट पहने है । हृष्ट-पुष्ट खूबसूरत युवक । राधे रेशम का कुर्ता और महीन धोती पहने है । आँखो पर चश्मा—एकहरे बदन का दुबला-सा युवक । राधे और शङ्कर गजाती की पास वाली कुर्सियों पर आमने-सामने बैठते हैं]

राधे—

मिस्टर शङ्कर, आप शेली * को समझे नहीं । नेपोलियन † की

---

* एक प्रख्यात अंग्रेजी कवि ।

† जगत् प्रसिद्ध फ्रांसीसी विजेता ।

क्या हस्ती जो शेली की समता कर सके !

शङ्कर—

हाँ जनाब, वह पिनपिनाने वाली शेली ! उसकी नेपोलियन से तुलना करना नेपोलियन का अपमान करना है।

राधे—

अच्छा, आप बतलाइये कि इतनी ऊँचाई, इतनी गहराई, इतनी पवित्रता, इतना विद्रोह और इतना सत्य जितना शेली की पंक्तियों में है, कहाँ मिलेगा ? उसने जो संसार को सन्देश दिया है, वह नेपोलियन के बस की बात कहाँ थी। शेली ने हमें प्रेम का मार्ग दिखलाया, उसने बर्बरता और पशुता के उन सिद्धान्तों का खण्डन किया, जिनका नेपोलियन प्रवर्तक था।

शङ्कर—

देखो जी राधे, शेली ने जो कुछ कहा वह सब पागलपन था। किस पवित्रता और किस सन्देश की बातें कर रहे हो ? इनका दुनिया में कोई अस्तित्व ही नहीं। नेपोलियन शक्ति का प्रतिनिधि था और शक्ति ही सत्य है, नित्य है। कल्पना के लोक में जो आदमी विचरता है, वह कायर है। इस वास्तविक जगत् से मुँह छिपा कर वह कल्पना का जगत् बनाता है। आदमी तो वह जो इसी दुनिया को अपनी कल्पना की दुनिया में बदल सके। नेपोलियन में वह ताकत थी— वह व्यक्तित्व था।

राधे—

नेपोलियन पशु था।

शङ्कर—

और शेली अपाहिज था।

[गजाती उठते हैं, पास आकर खड़े होते हैं]

गजाती—

किस बात पर बहस छिड़ी है? (मेज़ के सिर की कुर्सी पर बैठ जाते हैं) चा मंगवाऊँ?

शङ्कर—

दो प्याले चा!

गजाती—

(जोर से पुकारता है) तीन प्याले चा (राधे से) हाँ साहब, किस बात पर बहस छिड़ी है?

राधे—

मिस्टर गजाती, मिस्टर शङ्कर नेपोलियन को शेली से बड़ा बताते हैं। शैतान की तारीफ़ कर रहे हैं, फरिश्ते की निन्दा करके!

शङ्कर—

जी हाँ—गजाती साहब! ये राधे साहब उन जनाने शेली की तारीफ़ कर रहे हैं—एक बौने की एक योद्धा से तुलना कर रहे हैं।

[चा आती है]

गजाती—

(सर पर हाथ फेरते और कुछ सोचते हुए) मामला तो बड़ा टेढ़ा है!

राधे—

मिस्टर गजाती, आपने आँन्द्रे-मोसावकी * 'एरियल' पढ़ी है ?

गजाती—

ओह—वह एक महान् ग्रन्थ है और शेली महान् व्यक्ति था !

शङ्कर—

और गजाती साहेब आपने एबटकी लाइफ आफ नेपोलियन पढ़ी है ?

गजाती—

ओह—वह एक महान् ग्रन्थ है और नेपोलियन महान् व्यक्ति था।

[शर्मा जी का प्रवेश। मोटे-से आदमी, खद्दर का कुर्ता-धोती, काँग्रेसशाही झोला कुर्सी की पीठ पर लटका देते हैं, टोपी मेज़ पर रख देते हैं, कुर्सी पर बैठ जाते हैं]

राधे—

(चा पीता हुआ) मिस्टर गजाती, आप की चा उतनी ही सुन्दर है, जितना शेली था !

शङ्कर—

मिस्टर गजाती, आप की चा उतनी ही तगड़ी है, जितना नेपोलियन था ?

---

* प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक, जिस ने एरियल' नाम से शेली की जीवनी लिखी है।

[शर्मा जी सतर्क होते हैं, कनखियों से राधे और शङ्कर को देखते हैं; फिर गजाती को इशारे से बुलाते हैं। गजाती पास जाता है]

शर्मांजी—

एक प्याला चा !

[गजाती आवाज़ देता है—एक प्याला चा ! फिर लौटता है]

राधे—

शङ्कर मुझे दुःख है कि तुम जीवन में कवि की महत्ता नहीं समझते !

शङ्कर—

जी हाँ, मैं बेवकूफी से दूर रहना ही ठीक समझता हूँ।

राधे—

बेवकूफी—तुम शैतान के उपासक !

शङ्कर—

देखो राधे, ज़रा सोच-सम्हल कर ! योद्धा का उपासक यदि कुछ क्षणों के लिए स्वयम् योद्धा बन जाय तो कोई ताज्जुब की बात नहीं !

गजाती—

(बैठता हुआ) मिस्टर शङ्कर ! साधारण बात-चीत में इस तरह गरम हो जाना ठीक नहीं।

शर्माजी—

(उस ओर मुख़ातिब हो कर) भ्राताओ वन्दे ! आपको इस प्रकार कलह करना शोभा नहीं देता !

[दोनों मुड़ कर आश्चर्य से उस ओर देखते हैं।]

शर्माजी—

क्या मैं यह पूछने का साहस कर सकता हूँ कि आप सज्जनों में विवाद का विषय क्या है ?

शङ्कर—

यह झगड़ा हमारा परसनल (निजी) है—आप की दस्तन्दाजी की कोई जरूरत नहीं।

शर्माजी—

गाँधी-गाँधी ! कितना भयानक पतन हो गया हमारे नवयुवकों का ! वे विशुद्ध मातृ-भाषा का प्रयोग तक नहीं कर सकते, शिष्ट होना तो दूर रहा !

राधे—

मैं अपने अशिष्ट मित्र की ओर से माफ़ी मांगे लेता हूँ।

[मिस्टर वर्मा एडवोकेट का प्रवेश। सफ़ेद पतलून जो काफ़ी मैली हो चुकी है तथा काला कोट जो अब जवाब देने लगा है, पहने हैं। टाई अस्त-व्यस्त, कालर इतना ऊपर चढ़

गया है कि कमीज़ और कालर के बीच

गरदन साफ दिखलाई देती है।]

मिस्टर वर्मा—

(मेज़ के पास खड़े होते हैं, तीनों सज्जनों को ग़ौर से देखते हैं, ठण्डी साँस भरते हैं और शङ्कर की बग़ल में बैठ जाते हैं।)

एक प्याला चा !

गजाती आवाज़ देता है—

एक प्याला चा !

शङ्कर—

राधे ! तुमने मुझे अशिष्ट क्यों कहा ? मुझ से माफी मांगो !

गजाती—

अरे जाने भी दीजिये !

शङ्कर—

नहीं, इन्हें माफी मांगनी ही पड़ेगी।

राधे—

(शर्मा जी की ओर इशारा करते हुए) पहले इनसे माफ़ी मँगवाइये मिस्टर शङ्कर !

शङ्कर—

(शर्माजी से) देखिये, आप कौन हैं जो हम लोगों की बातों में कूद पड़े ? आप माफी मांगिये।

शर्माजी—

मैं सत्याग्रही हूँ—देश का सेवक हूँ। मैं ने कभी सरकार तक

से माफ़ी नहीं मांगी और जेल चला गया। पिता से लड़कर घर छोड़ आया हूँ, पर उन का फिर मुँह नहीं देखा, और परिणाम यह हुआ कि भूखों मर रहा हूँ। सत्याग्रह करने के समय पुलिस ने मुझे डण्डों से मारा, शराब की पिकेटिंग करने के समय शराबियों ने मुझे लातों से मारा और कर-बन्दी आन्दोलन के समय जमींदारों ने मुझे जूतों से मारा पर मैंने कभी क्षमा-प्रार्थना नहीं की।

[शर्माजी कहते-कहते कुछ अकड़ जाते हैं]

मिस्टर वर्मा—

(शङ्कर से) इन के ऊपर मानहानि का मुकदमा दायर कर दीजिये!

शर्माजी—

गांधी-गांधी! इन्हीं वकीलों के कारण तो हम सब अधःपतन की ओर बढ़े चले जा रहे हैं। वकील साहेब! आपको मानहानि की परिभाषा भी विदित है?

[नौकर चा लाता है]

राधे—

(मिस्टर वर्मा से) आप शायद एडवोकेट हैं।

मिस्टर वर्मा—

मुझे एडवोकेट होने का सौभाग्य प्राप्त है।

[छाती पर हाथ रखते हैं और गरदन झुकाते हैं]

राधे—

आप अच्छे आ गये। हम दोनों में यह तय नहीं हो रहा था कि शेली बड़ा था या नेपोलियन !

शर्माजी—

दोनों ही पतित थे ! इस संसार में सब से बड़े हैं महात्मा गांधी।

मिस्टर वर्मा—

महात्मा गांधी बड़े हैं, उन्होंने अपना जीवन वकील की हैसियत से आरम्भ किया था और बिना वकालत पढ़े कोई आदमी बड़ा हो ही नहीं सकता। न शेली ने वकालत पढ़ी थी और न नेपोलियन ने !

[कामरेड अहमद का प्रवेश]

अहमद—

हैलो गजाती—चा।

गजाती आवाज़ देता है—

एक प्याला चा !

[थोड़ी देर तक सब चुप रहते हैं—अहमद सब लोगों को ध्यान से देखता है]

शङ्कर—

जी हां, आप वकील हैं। ज़रा आपका हुलिया तो देखिए !

[मिस्टर वर्मा अपना कालर और टाई ठीक करते हैं]

राधे—

(शङ्कर से) देखिए कृपा करके आप किसी शरीफ आदमी का अपमान मत कीजिये।

अहमद—

(हँसता है) वकील और शराफत—मज़ेदार बात है। (शर्मा जी से) कहिये जनाब, वकील और शराफत! इतनी मज़ेदार बात कभी आपने सुनी ?

शर्मा जी—

अवश्य भ्राता—आप उचित कथन करते हैं। हमारे देश के एकमात्र नेता और विश्व के एकमात्र महापुरुष महात्मा गांधी का आदेश है कि वकालत छोड़ देनी चाहिए। गांधी ! गांधी ! ये वकील कितने पतित होते हैं !

अहमद—

गांधी ! वह 'अहिंसा-अहिंसा' पुकारने वाला गांधी–ग़लत रास्ते पर चलने वाला और दूसरों को चलाने वाला—अरे वह खब्ती फ़कीर—वह महात्मा—क्या कहा, दुनिया का सिर्फ अकेला बड़ा आदमी ?

शङ्कर—

खूब कहा—खूब ! तो जनाब ज़रा आपको देखिए, आप कह रहे थे कि गांधी नेपोलियन से भी बड़ा था। शर्म नहीं आती।

अहमद—

(शङ्कर से) देखो जी, मुझे जनाब-वनाब मत कहना वरना

आदमी मैं बिगड़ैल हूँ। मुझे सिर्फ कामरेड कहो।

[रामेश्वरप्रसाद का प्रवेश। नाटे कदके दुबले से आदमी, शेरवानी और चूड़ीदार पैजामा। पैरों में चप्पल। बाल बड़े-बड़े और बिखरे हुए हैं। बैठ जाते हैं]

शर्मीजी—

(कान में उंगली देते हुए) महाशय जी, मेरी एक प्रार्थना है कि आप लोग एक देवता का अपमान न करें, नहीं तो आप एक भयानक नरक के भागी होंगे।

अहमद—

नरक ! हाः हाः हाः इस नरक को तो लेनिन * ने बहुत पहले ही नेस्तनाबूद कर दिया है।

राधे—

दूसरा हत्यारा !

अहमद—

क्या कहा हत्यारा ! हां, अगर हत्यारा कहते हो तो मुझे कोई एतराज नहीं। लेकिन इतना तय है कि लोनिन सा बड़ा आदमी न कभी पैदा हुआ है और न कभी पैदा होगा।

[मेज़ पर हाथ पटकता है]

रामेश्वरप्रसाद—

आप ठीक कहते हैं, लेनिन में बिखरी हुई शक्तियों का एक प्रबल संग्रह-

* रूस का क्रांतिकारी नेता।

उसका व्यक्तीकरण—उसकी उग्रता ये सब मिलेंगे। लेनिन—नियति के क्रम और विकास में उसका प्रमुख हाथ है !

शर्माजी—

घोर पतन है भारतमाता का ! देश के कपूतो ! तुम अपने देवता, अपने इष्टदेव महात्मा गांधी को नहीं पहचान रहे हो—धिक्कार है।

रामेश्वर प्रसाद—

महात्मा गांधी देवता हैं, इस में कोई भी शक नहीं। उनकी गणना अवतारों में की जा सकती है।

शङ्कर—

ये दोनों नेपोलियन की बराबरी नहीं कर सकते।

रामेश्वरप्रसाद—

नेपोलियन हीरो था हीरो ! उसका नाम विश्व इतिहास में अमर है। नेपोलियन ! अहा—वह तूफान की भाँति आया और पतझड़ की भाँति चला गया।

राधे—

क्या नेपोलियन शेली से बड़ा था ?

रामेश्वर प्रसाद—

शेली ! शेली फरिश्ता था फरिश्ता ! अहाहा शेली—उसने दुनिया को एक सन्देश दिया !

[नौकर चा का प्याला रामेश्वर के सामने रखता है]

रामेश्वर—

(चा पीते हुए) ये लोग दानव थे—दानव ! मानव- समाज में दानव ही मान पा सकते हैं !

अहमद—

(रामेश्वर से) आप शायद शायर हैं !

रामेश्वर—

जी हाँ मैं कलाकार हूँ ! (चाय पीता है)

शर्माजी—

आपने कौन-कौन पुस्तकें लिखी हैं ?

रामेश्वर—

अभी नहीं लिखी हैं—लिखने वाला हूँ। अभी तो लिखने के लिए मसाला ढूंढ रहा हूँ ! (चाय पीता है।)

शङ्कर—

वैसे आपका पेशा क्या है ?

रामेश्वर—

मेरा पेशा क्या है ? क्या आप यह पूछना चाहते हैं कि रोज़ी कमाने के लिए मैं क्या करता हूँ—(चाय पीता है, सर उठा कर हँसता है) हाः हाः हाः बड़ा मज़ेदार सवाल है। तो जनाब इस सवाल का जवाब यह है कि मैं सब कुछ करता हूँ और कुछ भी नहीं करता। मैं घूमता हूँ; मौज करता हूँ और यही ज़िन्दगी है। मैं लोगों को देखता हूँ, उन्हें समझता हूँ—और उसके बाद ? उस के

बाद की बात न कोई जानता है न कोई जान सकता है ।

[चाय खतम कर देता है]

राधे—

आप अजीब तरह के आदमी हैं ?

रामेश्वर—

जी हाँ, मैं अजीब तरह का आदमी हूँ । लेकिन दुनिया में यह जरूरी है कि हरएक आदमी अजीब तरह का हो । दुनिया में यह ज़रूरी है कि अजीब तरह का आदमी बना जाय। और जो अजीब तरह का आदमी नहीं बन सकता, वह दुनिया में बढ़ भी नहीं सकता । समझे ! (उठता है—चलकर अहमद के पीछे खड़ा होता है) आप लोग जिन-जिन लोगों के नाम ले रहे थे वे सब अजीब तरह के आदमी थे—थे न ! (चलकर मि० वर्मा के पास रुकता है) और आप लोग चूंकि अजीब तरह के आदमी नहीं हैं, इसी लिए इन लोगों की तारीफ़ करते हैं—इन पर लड़ने के लिए आमादा हो जाते हैं। लेकिन मैं एक बात जानता हूँ—बड़ा वह है जो दुनिया को देने के बजाय उससे वसूल कर सके—इन सब लोगों ने दुनिया से वसूल ही किया, उसे दिया कुछ भी नहीं । (शङ्कर के पास खड़ा होता है) लेकिन मैं समझता हूँ कि वे सब के सब मर गये—एक गांधी को छोड़ कर; और जो मर गया, वह समाप्त हो गया । बड़ा वह जो वसूल कर सके—रुपया-पैसा, दीन ईमान सब कुछ आप से छीन सके—और जो मर गया वह कुछ

नहीं वसूल कर सकता। आज उसकी कोई हस्ती नहीं और जब उसकी कोई हस्ती नहीं, तो उसका नाम ही क्यों ? (गजाती के सामने एक आना फेंकता है—दरवाज़े और मेज़ के बीच खड़ा होकर) और इसी से जनाब मैं कह सकता हूँ कि आप सब गलती करते हैं। शेली, नेपोलियन, लेनिन, गांधी—ये सब के नाम हैं—नाम। इन सबोंसे बड़ा—कहीं बड़ा मैं हूँ अभी आप लोगों पर यह साबित हो जायगा—अच्छा दोस्तो, सलाम।

[जाता है।]

शङ्कर—

मुझे तो मालूम होता है कि इसका दिमाग खराब हो गया है।

अहमद—

(हँसते हुए) बहुरूपिया था।

मिस्टर वर्मा—

मग़रूर लौंडा !

राधे—

लेकिन बोलता खूब था।

शर्माजी—

वह हमारी दया का पात्र है !

शङ्कर—

चलो जी राधे, अभी हमारा मामला तय नहीं हुआ।

[उठता है और राधे भी उठता है।

दोनों जेब में हाथ डालते हैं और निकाल लेते हैं।]

शङ्कर—

मेरा पर्स गायब है !

राधे—

मेरी तो जेब ही गायब है। (कुरते की जेब दिखाता है।

मिस्टर वर्मा—

(एक के बाद एक अपनी सब जेबें देखते हैं) अरे एक हफ्ते में आज पाँच रुपये का नोट मिला था वह भी गायब है।

शर्माजी—

अरे मेरा झोला कहाँ गया ? उसमें आज ही ५०) चन्दे में लाया था वे पड़े थे।

अहमद—

ऐं—ये जेब से रुपये कहाँ गये ?

[सब एक-दूसरे का मुँह देखते हैं]

गजाती—

(सामने से इकन्नी उठा कर cash-box में डालना चाहता है, लेकिन कैश-बक्स नदारद)

गजाती—

दोस्तो, मेरी राय है कि वह साहिब सब से बड़े आदमी थे !

[पर्दा गिरता है]

———

श्री धर्मप्रकाश आनन्द

गवर्नमेंट कालेज लाहौर से बी० ए० 'आनर्स' की परीक्षा में सर्व-प्रथम रह कर, चार एक वर्ष हुए, श्री धर्मप्रकाश आनन्द ज्ञानार्जन के लिए विलायत गए थे। वहां आप तीन वर्ष तक रहे और इस बीच में आपने इंग्लिस्तान, फ्रांस, स्विटजर लैंड, आयर लैंड तथा अन्य यूरोपीय देशों की सैर की और वहां के साहित्यिकों से मिले जिनकी रचनाओं का आप पर गहरा प्रभाव पड़ा और आपकी लेखनी में तीक्ष्णता आ गई।

लिखना तो आपने कालेज जीवन से ही आरम्भ कर दिया था और कालेज में ही एक बार एक प्रसिद्ध अंग्रेज़ी मासिक की कहानी प्रतियोगिता में प्रथम आने पर आपको पैंसठ रुपये पुरस्कार भी मिला था, पर विलायत के भ्रमण और अध्ययन ने आपकी रचनाओं को वास्तविकता की ओर आकृष्ट किया है।

सामाजिक बुराइयों और संसार की विषमता के विरुद्ध आपकी लेखनी काफ़ी पैनी हो कर चलती है, ग़रीबी का

यथार्थ चित्र खींचने में भी आप निपुण हैं। श्री आनन्द अधिकतर अंग्रेज़ी में ही लिखते रहे हैं। हाल ही में भारत लौट कर उन्होंने हिन्दी में लिखना आरम्भ किया है।

श्री आनन्द का अध्ययन कितना गहरा है, उनका नाटक 'दीनू' इस बात का समुचित प्रमाण है। निर्धन श्रमिकों की हालत कितनी शोचनीय है, उनका जीवन कितना जर्जर और उनकी निराशा कितनी गहरी है—दीनू में पाठकों को इन्हीं बातों का आभास मिलेगा।

—:o:—

दीनू

पात्र परिचय

डाक्टर भल्ला = सरकार की ओर से रोगों की पड़ताल करने वाले बड़े डाक्टर

डाक्टर खन्ना = छोटे डाक्टर

मि० बलवन्त = डाक्टर खन्ना के सहकारी,

मंगू = चाय के बाग़ में काम करने वाला एक विपन्न पहाड़ी

रुकमन = उसकी पत्नी

धरना = उसका उन्नीस-बीस वर्ष का लड़का

बेली = धरना की पत्नी

भोली = मंगू की मां, धरना की दादी

दीनू = धरना का छोटा भाई जो अभी मुश्किल से तीन-चार महीने का है।

मेहरू, सोना, चन्दी = बच्चे

चौकीदार तथा अन्य नौकर

दीनू

स्थान

कांगड़ा ज़िला में चाय के बागों के समीप श्रमिकों की बस्ती में मंगू के मकान का आंगन।

समय

सूर्यास्त से कुछ देर पहले

[पर्दा उठने पर डाक्टर भल्ला और डाक्टर खन्ना अपने अमले के साथ मकान के आंगन में खड़े दिखाई देते हैं। मकान कच्चा पर दो मंजला है। बाहर से चिकनी मिट्टी और गोबर से लिपा हुआ और देखने में साफ़।

दो कमरे नीचे हैं। एक ऊपर। नीचे की मंज़िल में दाखल होने का केवल एक ही दरवाज़ा है जिस से अन्दर काफ़ी अंधेरा दिखाई दे रहा है। ऊपर के कमरे में एक छोटी सी

खिड़की है, जिसमें एक रस्सी के सहारे कुछ लहसुन सूखने के लिए लटका दिए गए हैं। आंगन के एक कोने में नीम के पेड़ और मकान की दीवार से बँधी हुई एक रस्सी पर दो चार बहुत ही मैले कुचैले कपड़े टँगे हैं।

दरवाज़े की दहलीज़ पर वृद्धा दादी अपने साठ वर्षों के बोझ से झुकी, लाठी टेके बैठी है। आंगन में कुछ छोटे बच्चे मिट्टी के गोले हाथ में लिए खेलते खेलते आकर आगंतुकों को उत्सुकता की नज़रों से ताकने लगे हैं।

खिड़की में दो नन्हीं लड़कियां उत्सुक नज़रों से इन डाक्टरों को देख रही हैं।

अन्दर से कभी कभी खांसने की आवाज़ आती है।]

डा० खन्ना—

(मि० बलवन्त के हाथ में पकड़ा हुआ रजिस्टर देखते हुए)

मंगू किधर है?

एक लड़का—

अभी बाहर से नहीं आए!

डा० खन्ना—

और धरना!

वही लड़का—

अन्दर रोटी खा रहा है !

डा० खन्ना—

उसे बुलाओ !

लड़का आवाज़ देता है—

ओ धरना—धरना ओ–ो–ो !

[एक हाथ में रोटी का टुकड़ा पकड़े, गले का ग्रास निकलता निकलता, धरना बाहर आता है उन्नीस बीस वर्ष का युवक, पर जैसे अभी से बूढ़ा हो चला है, चेहरे पर फीकापन और आंखों में निराशा]

डा० भल्ला—

(गम्भीर आवाज़ में) देखो, धरना हम सरकार की ओर से इस इलाके में रोगों की पडताल करने आए हैं, ताकि उनको दूर किया जा सके। हम तुम से कुछ प्रश्न पूछते हैं, तुम उनका ठीक ठीक उत्तर दो ! शाम होने लगी है और हमें अभी और दो चार जगह जाना है।

धरना—

फरमाइये !

डा० भल्ला—

अच्छा यह बताओ कि इस घर में पिछले दस वर्ष में कितने लोग मरे हैं ?

धरना—

(दहलीज़ पर बैठी हुई बूढ़ी दादी की ओर देखकर) कोई नहीं ! (ज़रा बेचैनी और घबराहट से ज़ोर देकर) कोई भी तो नहीं !!

डा० भल्ला—

कोई लड़का, बच्चा, मर्द, औरत; कोई तो मरा ही होगा ।

दादी—

बता दे न धरना ! बताता क्यों नहीं ? उन्हें कौनसा किसी का कर्ज़ देना था जो तुझे शर्म आए, ग़रीबों को डर किस बात का ?

धरना—

(फिर भी संकोच से) मेरे दो भाई मरे हैं ! पैदा होते ही मर गए थे।

डा० भल्ला—

और ?

धरना—

मेरी पहली लड़की पैदा होने के दो महीने बाद ही चल बसी थी।

डा० खन्ना—

अरे तुम विवाहित हो ! और फिर बाल बच्चों वाले !!

[धरना केवल लजाकर रह जाता है ।]

डा० भल्ला—

बीमार हुई थी !

धरना—

नहीं मां का दूध सूख गया था ।

[चेहरे पर एक काली सी छाया एक निमिष के लिए आकर चली जाती है]

डा० भल्ला—

(डा० खन्ना से) नोट कर लीजिए

(धरना से) कोई और ?

धरना—

छः महीने हुए मेरे चचा का देहान्त हो गया था।

डा० भल्ला—

बीमार था ?

धरना—

जी हाँ !

डा० भल्ला—

क्या बीमारी थी ?

धरना—

(ज़रा चौकन्ना होकर) बीमारी तो खास नहीं थी...... बस ऐसे ही बीमार था !

डा० भल्ला—

कितनी देर बीमार रहा ?

धरना—

(सोच कर और गिन कर) यही कोई डेढ़ दो वर्ष !

डा० भल्ला—

खांसी भी आती थी ?

धरना—

जी काफ़ी आती थी।

डा० भल्ला—

और खून भी दिनों दिन वह निढ़ाल होता जाता था।

धरना—

जी, जी ?

डा० भल्ला—

(खन्ना से) टी० बी केस*—लिख लीजिए

डा० खन्ना—

(नोट कर के और रजिस्टर देख कर) मेहरू कौन है ?

एक बच्चा—

मैं !

डा० भल्ला—

इधर आ बेटा ज़रा !

[मेहरू डरता डरता पास आ जाता है। डाक्टर भल्ला उसके गले को टोह कर देखते हैं।]

(फिर डा० खन्ना से) पीलिक', स्वास्थ्य कमज़ोर। खून कम !

[खन्ना लिखते हैं फिर पुकारते हैं]

सोना !

एक लड़की—

जी हाँ ?

* तपे दिक

[डा० भल्ला उसे पास जाकर देखते हैं ।]

(डा० खन्ना से) ऐस्टोमेलेशिया * और कैलशियम की कमी !

खन्ना लिखते हैं और पुकारते हैं—

चन्दी

[ऊपर खिड़की से पांच छः वर्ष की चंचल लड़की मैली सी गुड़िया को हाथ में लिए झांकती है । मुख पर लुभावना हास्य !]

चौकीदार—

बिटिया ज़रा नीचे आना !

डा० भल्ला—

यह किस की बेटी है ?

चौकीदार—

धरना के चचा की !

धरना—

मेरी बहिन है सरकार !

[चन्दी नीचे आती है और दरवाज़े के पास आकर रुक जाती है]

धरना—

क्या करती थी ऊपर चन्दी ?

---

* खून की कमी का रोग !

चन्दी—

गुड़िया खिला रही थी मैं, अब इसका विवाह जो होने वाला है। कपड़े लत्ते ठीक कर रही थी।

[गुड़ियों को छाती से लगाए झूमती है]

डा० भल्ला—

इधर आओ न बिटिया ज़रा तुम्हें देखें।

चन्दी—

इनकार में सिर हिलाती है।

धरना—

चन्दी इधर आओ मुन्नी !

चन्दी—

न न पहले मेरी गुड़िया के लिए कपड़े दो, चचा जी जब भी लाहौर से आते थे तो मेरे लिए मिठाई और मेरी गुड़िया के लिए कपड़े लाते थे, कपड़े न होंगे तो इसका विवाह कैसे होगा, शन्नो तो अपने गुड्डे के लिए दहेज़ मांगती है।

मि० बलवन्त—

(हँसते हैं) अजब चंचल लड़की है।

डा० खन्ना—

आओ बेटी—हम तुम्हें कपड़े देंगे।

[चन्दी मुस्कराती हुई आगे आती है]

डा०खन्ना—

लड़की बड़ी समझदार लगती है, इन गँवारों में यह कैसे आगई।

डा० भल्ला—

(निरीक्षण करते हुए डा० खन्ना से अंग्रेज़ी में) इसे तो गंडमाला प्रतीत होती है। हो सकता है दिक़ हो जाए।

[चन्दी डाक्टर खन्ना के कोट का दामन पकड़ लेती है]

चन्दी—

लाइए अब मेरी गुड़िया के लिए कपड़े।

[डा० खन्ना दहशत से पीछे हटते हुए जेब से चवन्नी निकाल कर फेंकते हैं।]

डा० खन्ना—

लो लो जाओ इन पैसों के कपड़े बनवा लेना!

[चन्दी खुशी खुशी चवन्नी उठा लेती है! मुड़ कर खन्ना की ओर देखती है, मुस्कराती है, गुडिया को पुचकारती है और दुलार से कहती है—]

न रो मेरी बिटिया, अब तेरे लिए खूब कपड़े बनेंगे।

डा० भल्ला—

(खन्ना से) इस लड़की की मुखरता को तो देखो!

[डा० खन्ना अभी घबराए हुए हैं]

मि० बलवन्त—

(अंग्रेज़ी में) मैं स्वयं यह सोच रहा था डाक्टर साहब, कि इन गँवारों में ऐसी प्रखर-बुद्धि वाली लड़की कैसे पैदा हो गई !

डा० भल्ला—

(अविकृत भाव से अंग्रेज़ी में) इस के अन्दर तपे-दिक के कृमि हैं। इस की यह मुखरता उन्हीं के कारण है । मस्तिष्क को उन से स्फूर्ति मिलती है, पर शीघ्र ही यह बच्ची अपनी मुखरता और चंचलता के साथ सदैव के लिए संसार से चली जाएगी ।

[मि० बलवन्त मुँह बाए खड़े रह जाते हैं, डाक्टर खन्ना घृणा से लड़की को देखते हैं ।]

चन्दी—

(उन की ओर देख कर मुस्कराती हुई) तुम्हें भी मैं अपनी गुड़िया रानी के विवाह पर बुलाऊँगी, ज़रूर आना

[गुड़िया को सीने से लगाये भाग जाती है]

मि० बलवन्त—

(कुछ आकुलता से अंग्रेज़ी में) डाक्टर साहब इसे तो अस्पताल पहुँचाने का प्रबन्ध करना चाहिये, ताकि इस बेचारी की ज़िन्दगी बच जाए, समय पर इलाज.........

डा० भल्ला—

(रूखी मुस्कराहट से अंग्रेज़ी में) कहां अस्पताल है इस इलाके

में ? और फिर हो भी तो इन ग़रीबों के पास तो शायद वहां तक जाने का खर्च भी न हो। इस की किसमत में यहीं खत्म होना लिखा है।

बलवन्त—

लेकिन डाक्टर साहब......

डा० खन्ना—

(सँभल कर और रजिस्टर देखकर) भोली !

दादी—

मैं हूं।

डा० भल्ला—

बड़ी मां तुम्हें कभी कोई बीमारी तो नहीं हुई ?

दादी—

(लम्बी साँस लेकर) मुझे क्या होगा बेटा ? उम्र की बीमारी है बस ! वह भी न जाने कब समाप्त हो जाएगी। एक समय था, जब सारा सारा दिन काम करके भी न थकती थी, अब तो अन्दर से दरवाज़े तक आते आते साँस फूल जाती है। जोड़ जोड़ दर्द करते हैं, घुटने जुड़ गए हैं, घिसट-घिसट कर यहां तक आ जाती हूं। मेरा क्या है बच्चा, ऐसे ही चली जाऊं, अब तो यही प्रार्थना है, तुम इन बच्चों को देखो।

डा० भल्ला—

(डा खन्ना से) इसे भी ऐस्टोमेलेशिया की शिकायत लगती है।

डा० खन्ना—

(धरना से) यह तुम लोगों को ऐस्टोमेलेशिया का रोग क्यों है ?

धरना—

वह क्या होता है सरकार ?

डा० खन्ना—

तुम लोगों में खून की कमी है। क्या तुम्हें मालूम नहीं होता कि तुम्हारी हड्डियां जर्जर हो गई हैं (दादी की ओर इशारा करता है) तुम नहीं जानते कि तुम्हारे अंग टेढ़े हो गए हैं (मेहरू की टेढ़ी टांगों की ओर इशारा करता है) तुम्हें मालूम नहीं कि तुम्हारे चेहरे पीले-जर्द हो गए हैं (सोना की ओर इशारा करता है) और क्या तुम महसूस नहीं करते (धरना की ओर इशारा करता है ।) कि तुम्हारी शक्ति दिन-प्रति दिन क्षीण हो रही है ।

डा० भल्ला—

(डा० खन्ना से) मैं एक मिनट में आया ।

[रूमाल निकाल कर खंकारते खंकारते बाहर जाते हैं ।]

धरना—

सरकार हम क्या कर सकते हैं, परमात्मा की मर्जी ही ऐसी है ।

मि० बलवन्त—

परमात्मा की मर्जी, इस में परमात्मा का क्या दोष है ? तुम लोग दिन रात मेहनत करते हो, पर खाते कुछ नहीं । घी दूध का प्रयोग करो, लस्सी दही पीयो, फल खाओ कि तुम में कुछ कैलशियम

पैदा हो, तुम खाते हो चावल, परमात्मा—हुँ !

[बेज़ारी से सिर हिलाता है।]

धरना—

(जैसे अपने आप) घी, दूध, दही ! (हाथ में पकड़ा हुआ सूखी रोटी का टुकड़ा दिखाता है) सरकार यही अगर मिल जाए तो ग़नीमत है। ५ आने रोज़ाना में १० आदमियों का पेट पालना होता है। मैं और मेरी पत्नी दो दो आने रोज़ाना लाते हैं, एक आना मेरी छोटी बहिन लाती है, मां मेरी सात महीने से बीमार पड़ी है। (अन्दर से खांसी की आवाज़ आती है) बाप को मारकर काम से निकाल दिया गया।

बलवन्त—

दो आने रोज़ाना !

धरना—

जी सरकार, सारा सारा दिन काम कर के। कभी अगर कुछ मिनटों की देर हो जाय तो काम भी लिया जाता है और ग़ैर-हाज़री भी लग जाती है। घी···दूध········· । (विषाद से मुस्कराता है)

[मि० बलवन्त मुँह बाए रह जाते हैं।
डा० भल्ला वापस आते हैं, रूमाल से
मुँह को साफ़ करते हुए]

दीनू]

डा० खन्ना—

(व्यस्त होकर) अब इस घर में केवल तीन चार व्यक्ति रह गए हैं, मंगू, रुकमन, दीनू और बेली, यह बेली कौन है ?

धरना—

मेरी पत्नी है सरकार ! कल ही मैके गई है एक दो रोज़ में उसके बच्चा होने वाला है।

[चेहरा लाल सा हो जाता है। अन्दर से खांसी की आवाज़ आती है]

डा० खन्ना—

मंगू कहां है ?

धरना—

शायद अभी आए नहीं !

डा० खन्ना

और रुकमन ?

धरना—

रुकमण तो मेरी मां है। वह तो सात महीने से अन्दर बीमार पड़ी है (जैसे अपने आप) वह बाहर कैसे आएगी ?

दादी—

हाँ सरकार, बेचारी रुकमण बाहर कैसे आएगी ?

[अन्दर से खांसी की आवाज़ आती है

और धीरे धीरे, बच्चे को कंधे से लगाए, दीवार
का सहारा लेती हुई रुकमण प्रवेश करती है।—
पीला जर्द चेहरा; मैले-कुचैले कपड़े,
रूखे उड़ते बाल, और हड्डियों का पिंजर !]

रुकमण—

(खांसते हुए) किस ने मेरा नाम ले कर पुकारा ! (डाक्टर को देख कर हाँफते हुए,) डाक्टर है। (विषाद से, हँसती है) अब क्यों आए डाक्टर ? पैसे तो अब भी मेरे पास नहीं ! चार आने रोज़ाना बेटा और बहू लाते रहे, उसमें एक वक्त पेट भर खाना तो मिलता नहीं, फ़ीस (खांसती है) और अब तो बहू भी चली गई। अब तो बच्चा सारा दिन जान तोड़ कर दो आने ही पाता है। (मस्तक से पसीना पोंछती है) पैसे मेरे पास कहां ?

[बच्चे को कंधे से हटा कर चूमती है,
लड़खड़ाती है, फिर दीवार का सहारा लेती है,
बच्चा बेहोश है, अचानक रो पड़ती है।]

नहीं डाक्टर मुझे माफ़ करो, मैं दूंगी, तुम्हारी फ़ीस दूंगी, पहले मुझे अपना खयाल था, अब तो दीनू का भी है, इस निरीह बच्चे का भी खयाल है। खुद बिक जाऊंगी, भीख मांग लूंगी। तुम इसे बचा दो, तुम इसे बचा दो, इसे बचा दो डाक्टर !!!

[रो पड़ती है, और दीवार का सहारा छोड़,
आगे बढ़ कर बच्चे को डाक्टर को दिखाना

दीनू]

चाहती है पर लड़खड़ा कर गिरती है। डाक्टर भल्ला और धरना सँभालते हैं। बाहर मंगू नशे में चूर लड़खड़ाता बड़बड़ाता दाखिल होता है।]

अब के नज़र आ जाए तो मार ही डालूं, मार ही डालूं (हँसता है) लम्बे, तेज़ चाक़ू से, नहीं डाटी से, बकरे की तरह (फिर हँसता है, लड़खड़ाता है।) दो रुपये, फ़ीस......!

[आगन्तुकों को देखता है, फिर रुकमण को, फिर उस की ओर झपटता है।]

क्यों इस तरह खुले सिर हर ऐरे ग़ैरे के सामने आ जाती है ? क्यों आ जाती है तू !

[उसे घसीटता हुआ अन्दर ले जाता है और लड़खड़ाता हुआ आगंतुकों की ओर आता है, नशे में चूर थलथलाती आवाज़ में]

तुम कौन हो, जो दूसरे के घर में बिना पूछे घुस आये हो, कौन हो तुम, कौन हो तुम, मैं मंगतराम राजपूत............

[सीना ताने बढ़ता है]

डा० खन्ना—

क्या बक-बक कर रहा है !

मंगू—

बक-बक !—क्यों बिना पूछे मेरे घर आये, क्यों मेरी स्त्री को

बुलाया, मैं मामला चला दूंगा, मैं राजपूत.........

डा० खन्ना—

क्यों जेल की रोटियां तोड़ने को जी चाहता है?—चौकीदार!

मंगू—

जेल! जेल!! (क़हक़हा मार कर हँसता है और लड़खड़ाते लड़खड़ाते बचता है) भिजवा दो जेल में, वहां ऐश है, दो वक़्त रोटी, और कोई ग़म नहीं!

डा० भल्ला—

(अंग्रेज़ी में) खन्ना, इसने बहुत पी रक्खी है।

धरना—

हजूर! इसे माफ़ कर दें, यह तो अपने में नहीं है।

मंगू—

(लड़के की ओर झपटता है) तू कहता है मैं होश में नहीं हूँ।

[चौकीदार धकेल कर उसे परे ले जाता है
लड़खड़ा कर मंगू गिर पड़ता है और वहीं
पड़ा बड़बड़ाता है।]

मि० बलवन्त—

यह शराब पर जितने पैसे उड़ाता है, उतने से अगर इनका इलाज करे तो कितना लाभ हो।

दूसरा चौकीदार—

(ज़रा सा हँस कर) पैसा किस के पास है हजूर, इधर उधर से

एक दो आने कमा कर उसी का ठर्रा चढ़ा जाता है।

बलवन्त—

जबकि उसी से एक आदमी का पेट पल सकता है।

चौकीदार—

(दीर्घ निश्वास छोड़कर) क़िस्मत के खेल हैं हजूर ! कल की बात है यही मंगू गाँव भर में अपने अच्छे चाल-चलन के लिए प्रसिद्ध था सरकार ! सब इसकी क़सम खाते थे। दोनों पति-पत्नी चाय के बाग़ों से दो दो आने लाते थे, धरना और उसकी बहू भी कमाती थी और मज़े से बसर हो रही थी। फिर इसकी घर-वाली बीमार हो गई। बच्चा पैदा होने वाला था। तकलीफ़ उसे ज्यादा थी। मंगू उसे लेकर कई कोस की मंज़िल मार कर पालमपुर गया; वहां डाक्टर को दिखाया; उसने फ़ीस मांगी, पर फ़ीस इनके पास कहाँ ? और फ़ीस देते भी, तो दवाई के पैसे कहाँ थे ? रोते धोते वापस आ गए। मार्ग में ही बच्चा पैदा हुआ, और तब से वह बीमार है। तभी से, न जाने किस तरह, इसने पीकर बेसुध होना सीख लिया है। चाय वालों ने इसी लिए इसे मार कर भगा दिया।

एक नौकर—

सरकार, बड़ा भला आदमी था, अब 'बिपत' में फँस गया है। घरवाली ही नहीं, बच्चा भी बीमार है। हमने फिर कह सुन कर अस्पताल भेजा था। पर डाक्टर तो चाहता था कि उसकी मुट्ठी गरम हो तब उसे और बच्चे को अस्पताल में दाखिल करे। बस,

उसी दिन से यह और भी चौपट हो गया।

[सब स्तब्ध खड़े रहते हैं। फिर डाक्टर खन्ना जैसे अस्त होते सूरज की ओर देखकर चौंकते हैं]

डा० खन्ना—

देर हो रही है, हमें अभी और भी दो जगह जाना है।

[डाक्टर भल्ला कोट को ठीक करते हैं, सहसा रुकमण विसट कर उनके पाँव पकड़ लेती है।]

रुकमण—

डाक्टर, डाक्टर, इसे आराम कर दो, परमात्मा के लिए, इसे नीरोग कर दो। देखो तुम्हारे भी बच्चे होंगे, उनकी उम्र परमात्मा दुगनी करेगा। भगवान के लिए इसे देखो। तुम पैसे माँगते हो, मैं दूँगी, मैं कहीं से भी लाकर दूँगी, इसे देख जाओ,

[डाक्टर भल्ला के पाँव पकड़ लेती है]

(करुण स्वर में) डाक्टर !

[रोती हुई उसके चेहरे की ओर व्यथित आँखों से देखती है]

नहीं नहीं, आप तो वह नहीं, आप तो दयावान है, आपके चेहरे से दया टपकती है, मेरे दीनू को देख लीजिए सरकार, आज कितनी देर से बेहोश है !

[डाक्टर भल्ला पांव पीछे खींचते हैं]

रुकमण—

(उठ कर अत्यन्त करुण स्वर में) डाक्टर जी !

[बच्चे को उनके पाँवों पर रख देती है ।
डाक्टर भल्ला झुकते हैं, पर चौंक कर पीछे
हटते हैं, मि० बलवन्त और डा० खन्ना आगे
बढ़ते हैं ।]

डा० खन्ना—

(आश्चर्य से) हैं !

[रुकमण डर कर झुकती है]

डा० भल्ला—

(शोक के स्वर में) माई सब्र करो, तुम मरे बच्चे को लिए फिरती हो ।

रुकमण—

मेरे लाल !

[पछाड़ खा कर गिर पड़ती है ।]

[सूरज की अन्तिम किरण निमिष मात्र के
लिए मृतक के शव पर चमकती है फिर
अंधकार में लोप हो जाती है]

पर्दा

श्री उदयशंकर भट्ट

श्री उदयशंकर जी हिन्दी के उन थोड़े से लेखकों में हैं जो सफल कवि के साथ अच्छे नाटक-कार भी हैं। दाहर, अम्बा, विक्रमादित्य, विश्वामित्र, मत्स्यगन्धा, सगरविजय और कमला लिख कर वे नाटकों के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। इधर उन्होंने कुछ एकांकी नाटक भी लिखे हैं। एकांकी नाटक-कारों में वे एक सम्मान-नीय पद के अधिकारी हैं।

एकांकी नाटक की कथा-वस्तु में समस्त जीवन या जीवन के अनेक भागों का चित्रण नहीं हो सकता। जीवन की एक प्रधान भावना का आदि और अन्त ही एकांकी नाटक का आधार हो सकता है। भट्ट जी के 'दस हज़ार' शीर्षक नाटक में हम यही बात पाते हैं। विसाखा राम के हृदय में कितना द्वन्द्व है, यह नाटक के कथोपकथन से स्पष्ट हो जाता है। एक ओर पुत्र-प्रेम—दूसरी ओर सम्पत्ति-प्रेम। किन्तु व्यवसायी होने के कारण सम्पत्ति के लिए उस का आकर्षण अधिक हो जाता है और वह पुत्र-प्रेम में व्याकुल होते हुए भी अपने धन को नहीं भूल सकता। यह प्रवृत्ति कितनी कुशल लेखनी से स्पष्ट की गई है—यह केवल पढ़ने से स्पष्ट हो

सकता है ! राजो की मा ने उस प्रवृत्ति को जानते हुए भी पति-व्यवहार की मर्यादा अक्षुण्ण रखने के लिए अपने पुत्र सुन्दरलाल से केवल यही कहा———'इन्हें नींद आ गई है बेटा, आओ चलें।' भट्ट जी ने मनोवैज्ञानिक चित्रण के साथ दो विपरीत भावनाओं का संघर्ष स्पष्ट करने में सफलता प्राप्त की है।

भट्ट जी की लेखनी में मनोभाव सरलता से स्पष्ट होते जाते हैं। पात्रों के अनुरूप भाषा की सृष्टि में तो वे सिद्धहस्त हैं। घटनाओं में कौतुहल चाहे न हो किन्तु स्वाभाविकता के साथ जीवन के चित्रों को स्पष्ट करने में भट्ट जी ने विशेष सफलता प्राप्त की है। उन की दृष्टि केवल व्यक्तिवाद तक ही सीमित नहीं है वरन् वे मनोवैज्ञानिक ढंग से समाज के भयानक हिंसात्मक स्वरूप को अपनी शक्तिशालिनी लेखनी से कोमल बना कर धुने हुए कपास को निर्मल और भव्य स्वरूप दे देते हैं। उनकी प्रतिभा में समाज का व्याघ्र गोमुखी गंगा का स्वरूप लेकर हमारे हृदय में करुणा का संचार कर देता है। संगमूसा कोमल हो कर हमारी आँखों का काजल बन जाता है।

श्री रामकुमार वर्मा (एम० ए०)
(अध्यापक हिन्दी विभाग
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी)

दस हज़ार

पात्र

विसाखाराम	:	सीमा-प्रान्त का एक सेठ
सुंदरलाल	:	विसाखाराम का लड़का
राजो	:	विसाखाराम की लड़की
राजो की मा	:	सेठ की पत्नी
मुनीम		

दस हज़ार

समयः—

शाम के पाँच बजे

[सीमा-प्रान्त के एक नगर में एक दुमञ्जिला मकान । ऊपर की मञ्जिल में एक बड़ा-सा कमरा, जिसमें दो दरवाज़े हैं। एक सीढ़ी के पास और दूसरा मकान के भीतरी भाग में जाता है । गली की तरफ़ दो खिड़कियाँ हैं । भीतर कमेरे में एक बड़ी खाट है, जिस पर मैला-सा बिस्तर बिछा है । पूर्व की तरफ़ कोने में एक चौकी है, उसके सामने आले में ठाकुर जी का एक सिंहासन है। उसमें कुछ पीतल की मूर्तियाँ हैं । उन पर गेंदे के फूल की माला चढ़ी है । आले की कील में एक रुद्राक्ष की माला है । हाथ की लिखी हुई छोटी-सी

दो कितावें हैं। कमरे में कुछ तसवीरें हैं — एक रामचंद्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की, जिसमें राम के राज्याभिषेक का दृश्य है; हनुमान माला तोड़ रहे हैं। दूसरी तसवीर एक काली की है। कमरे में एक मोढ़ा रखा है और एक टूटी हुई कुर्सी, जिसका बेंत टूटा हुआ है। एक छोटी-सी मेज़ एक कोने में रखी है। उस पर एक लोटा और उसके ऊपर एक गिलास रखा है। दो खूँटियाँ गड़ी हुई हैं, उन में एक पर एक पगड़ी और दूसरी पर एक दुपट्टा और एक मैला-सा कोट है। खाट पर लाला विसाखाराम बेचैनी से लेटे हुए हैं। उनकी आँखों में बेचैनी है। चेहरा पिचका हुआ, रंग गोरा। बाल बिखरे हुए हैं। मालूम होता है बड़ी चिन्ता में हैं। हाथ में चिट्ठी है, जो बार-बार उठाकर पढ़ते हैं और फिर सिरहाने रख देते हैं। फिर उठा लेते हैं, पढ़ते हैं, और फिर रख देते हैं। उठकर बैठ जाते हैं और छत की कड़ियों की ओर ताकते हैं और धम से फिर खाट पर लेट जाते हैं।]

विसाखा—

हाय, क्या जाना था, यह दिन भी देखना पड़ेगा। हे रामजी! उबारो महाराज! बड़ी बिथा आ पड़ी है। कोई उपाय शूझे नहीं है। (आँख मींचकर ठाकुर जी को हाथ जोड़ने लगते हैं, फिर आँख खोलकर पत्र हाथ में लेकर पढ़ने लगते हैं) क्या करूँ? राजो, राजोरी!

[भीतर के दरवाज़े से १४ साल की
एक लड़की दौड़ती हुई आती है।]

राजो—

हाँ चाच्चाजी! क्या कहो हो!

विसाखा०—

अरी, क्या अभी मुनीमजी नहीं आये! मरा जाऊँ हूँ। बड़ी मुसीबत है।

राजो—

भाईजी कब आवेंगे भला? एकदम पास आकर) बुला लो न भाई को। कुछ रुपयों की ही तो बात है। हाय, (आँखों में आँसू भरकर) हे भगवान्, बड़े नामुराद हैं ये लोग! चाच्चाजी, भेज दो रुपया, क्या देखो हो?

विसाखा०—

(खाट पर बैठ कर) क्या देखूँ हूँ बेटा! अपनी किसमत को रोऊँ हूँ। रुपया भी कहा धरा है। अभी अनाज भी तो खरीदना

आने रुपए का सूद देकर दो हज़ार माँगने आया था, उसको भी तो देना ही है। दस हज़ार के सरकारी बौण्ड खरीदने हैं, ऐसा मौका कब मिलेगा। इतना सूद क्या छोड़ा जा सके है बेटी ! ओः ! दस हज़ार देने पड़ेंगे ! (एक दम खाट पर धड़ाम से लेट जाता है।)

राजो—

(दौड़ कर) चाच्चाजी, क्या हुआ तुम्हें ! भाभी, ओ भाभी ! देख तो चाच्चा को क्या हुआ है ?

[राजो की मा 'अरी आई' कहती हुई आती है।]

राजो की मा—

कह तो दिया, परेसान होने की क्या जरूरत है। दे दो दस हज़ार। रुपए तो फिर भी मिलते रहेंगे। लड़का तो फिर...हा भगवान्, क्या कह रही हूँ। हे रामजी ! (हाथ जोड़ कर आले में रखे सिंहासन की तरफ़ देखने लगती है) यों ही करे हैं ! दया करो! भगवान् !

विसाखा—

मुनीमजी नहीं आये ? (आँख बन्द कर लेता है !)

राजो—

आते ही होंगे। तुम्हारा कैसा जी है ?

राजो की मा—

कहूँ तो हूँ, फिकर क्यों करो हो ? हे ईश्वर, मेरे लड़के को लौटा दो। मेरा सब कुछ ले लो। मेरे प्यारे बच्चे को मुझे दे दो भगवान्! (रोने लगती है।)

राजो—

(मा के गले से लिपटकर) रोवे क्यों है भाभी! चाच्चा से कह के भाई को बुला ले न!

राजो की मा—

(आँसू पोंछती हुई) कैसे बुलाऊँ बेटी, तेरे चाच्चा को तो रुपए की पड़ी है। ईश्वर ने एक ही लड़का दिया...हा भगवान्!

विसाखा—

(आँखें खोलकर) राजो, मुनीमजी नहीं आये बेटी!

राजो—

अभी तो नहीं आये।

विसाखा०—

न मालूम मुनीम ने खांड का सौदा किया या नहीं। इस बखत तो खांड़ खरीदना जरूरी है। फिर महँगी हो जायगी। कैसी मुसीबत है। न जाने इबराहीम से रुपए का तक़ाज़ा किया या नहीं। आज चार साल होने आये, अभी तक सूद भी नहीं दिया। मुकदमा लड़ना पड़ेगा, तब कहीं जाकर वह बेईमान रुपया देगा। (पत्र हाथ में लेकर) पर इस को क्या करूँ?

['राजो, राजो' नाम लेकर मुनीम

आवाज़ लगाता हुआ जीने में खट्-खट् चढ़ता आता है।]

विसाखा०—

लो, मुनीमजी, आ गए। (एकदम उठकर बैठ जाता है) आओ मुनीमजी, आज बड़ी देर लगाई।

[राजो और उसकी मा दूसरे दरवाज़े से घर में चली जाती हैं।]

मुनीम—

जै रामजी की सेठजी ! देर हो गई। दिन-भर का हिसाब-किताब करना था। तेरह आने के हिसाब से खांड के सौ बोरे खरीद लिये हैं। मुहम्मद बकस का आदमी आया था। मैंने कह दिया, सेठजी के आने पर फैसला होगा। सुना, इबराहीम फ़रार हो गया है। रोकड़ मिलाते इतनी देर हो गई है। हाँ पठानों का कोई खत आया क्या ?

विसाखा०—

खांड तो बारह आने थी न ! फिर तेरह आने क्यों खरीदी ? इब्राहीम भाग गया क्या ? यह तो बड़ी बुरी खबर है, मुनीमजी, चार हज़ार नक़द हैं। कैसे छोड़े जा सके हैं। चौधरी से नहीं कहलवाया ? वह तो ज़ामिन है न ! सरकारी बौण्ड की कोई चिट्ठी आई ? रुपए तैयार रखना। बौण्ड तो खरीदने ही होंगे।

मुनीम—

पठानों की तरफ़ से कोई चिट्ठी आई सेठजी ?

विसाखा०—

रोकड़ में कितना बाकी है ? चौधरी के पास अभी आदमी भेजो और तकाज़ा करो। (खाट पर लेटकर) सब तरफ़ मुसीबत है। रुपया लेकर देने का कोई नाम नहीं लेता। (आँखें बन्द करके लेट जाता है) हा भगवान् ! हे रामजी ! कैसा बुरा समै है !

मुनीम—

पठानों ने कुछ नहीं लिखा सेठजी ? सुन्दरलाल का खयाल करना ही चाहिये। न मालूम बिचारे को कैसी तकलीफ़ दे रहे होंगे। (सेठ की ओर देखता है।)

विसाखा०

लो यह पढ़ो। कैसा दुष्ट है लड़का ! ज़रा भी लड़ाई नहीं करी। डोली में नई बहू की तरह उनके साथ चला गया मेरी छाती पर मूंग दलने ! कहाँ से लाऊँ दस हज़ार ? दस हज़ार ! (चिट्ठी मुनीम के हाथ में देकर) लो पढ़ो, सब बरबाद कर दिया। भला बाहर निकला ही क्यों ?

मुनीम—

सेठजी, सुन्दरलाल का कोई कसूर नहीं है। उगराही को उसे तुम्हीं ने तो भेजा था।

[खत हाथ में लेकर पढ़ने लगता है।]

विसाखा०—

बरबाद हो गया मैं तो मुनीमजी ! हाँ, ज़रा ज़ोर से पढ़ो।

मुनीम—

(चौंक कर) हैं ! यह तो सुन्दरलाल की ही लिखावट है ! लिखता है—'पिता जी, अगर मेरी ज़िन्दगी चाहते हो तो किसी आदमी के हाथ खैबर फाटक के बाहर आज ठीक शाम के आठ बजे दस हज़ार रुपया पहुँचा दो। पुलिस को, या कोई आदमी लेकर आये तो खान कहता है, मुझे मरा ही समझो। इन लोगों ने मुझे बड़ी तकलीफ़ दी है। शायद नरक की कोई भी यातना इस से अधिक नहीं हो सकती। मुझे विश्वास है, आप मेरी रक्षा करेंगे।

आपका पुत्र,

सुन्दरलाल।'

नीचे खान ने खुद पश्तो में लिखा है—

'अम तुमको इत्तला देता है, तुम आज बुधवार को शाम के आठ बजे दस हज़ार रुपया खैबर फाटक के बाहर पहुँचा दे, नईं तो तुम्हारा लड़का को मार डालेगा।

अमीरअली खां।'

[मुनीम खत रख कर विसाखाराम की ओर देखने लगता है।]

मुनीम—

सेठ जी, दस हज़ार की क्या बात है। आज ही तो बुधवार है। अगर कहें तो मुहम्मद बकस को न देकर दस हज़ार का इन्तज़ाम कर लूँ। रुपया तो है ही।

विसाखा०—

(उठकर) आने रुपए का सूद है मुनीमजी ! दस हज़ार यों ही जायँगे ? हे भगवान् ! कंगाल कर दिया !

[राजो और उसकी मा एक दम कमरे में आ जाती हैं।]

राजो की मा—

यों ही जायँगे, सुना तुमने मुनीमजी ! इनकी अकल पर तो पत्थर पड़ गए हैं। कुछ नहीं सोचते। बस, रुपया, रुपया ! मेरा लड़का ला दो मुनीमजी ! हाय मेरा सुन्दर ! हाय मेरा बच्चा रे !

[घूँघट किये ज़मीन पर बैठ जाती है। राजो दौड़ कर पिता से लिपट जाती है और निहोरे के ढंग से उसे देखने लगती है]

विसाखा०—

भला मुनीम जी, मैं क्या कहूँ हूँ कि सुन्दर न आये ? मैं तो खुद चाहूँ हूँ कि लड़का किसी तरह आ जावे। मैं क्या सुन्दर का बाप नहीं हूँ ? तुम्हीं बताओ। लड़के के बिना तो घर सूना-सूना सा लगे है।

मुनीम—

(सिर हिला कर) हाँ, सो तो है ही।

राजो की मा—

आज सवेरे से मैं इनका रूप देख रही हूँ। कहूँ हूँ रुपए के पीछे लड़के को हाथ से न खोओ रुपया तो हाथ का मैल है। दस हज़ार क्या बड़ी बात है। पर इन्हें तो न जाने क्या हो गया है।

खाँड और सूद से इनका विचार छूटे तब न ! मुनीमजी, मैं तुम्हारे पैरों पड़ूं हूँ, मेरा सुन्दर ला दो !

मुनीम—

मताजी, घबराओ मत । सुन्दर को घर पर ही समझो ।

राजो की मा—

घर पर कैसे समझूँ मुनीमजी, घबराऊँ क्यों नहीं । इनकी (पति की ओर इशारा करके) हालत देखकर तो मेरे जी में ऐसा हो रहा है कि मैं लड़का खो बैठूँगी । कहते हैं, जो होना था, सो हो गया । और लड़का...हाय ! न मालूम इनसे यह कैसे ऐसा कहा गया । हे भगवन् !

राजो—

मुनीमजी, मेरे भाई को जल्दी बुला दो । देखो, कई रातों से मा सोई नहीं हैं । सारी-सारी रात रोती रही है । आँखें सूज गई हैं । मेरे भाई को जल्दी ले आओ, मुनीमजी !

[रोने लगती है ।]

राजो की मा—

मैं कहू हूँ, मेरा गहना लेकर बेच दो और मेरे लड़के को बचा लो ।

मुनीम—

घबराने की क्या बात है माताजी, सेठजी को भी तो आपसे कम फ़िकर नहीं है ।

विसाखा०—

हाँ सो तो है ही। मैं भी कब सोया हूँ रात में। दिन-रात चिन्ता लगी रहती है। सुन्दर मेरी आँखों के सामने झूमता रहे है उसके बचपन की बात याद आया करे है। इधर इब्राहीम रुपया देने में ही नहीं आवे है। क्या तुमने उसके सूद का हिसाब लगाया मुनीमजी? कितना बने है उसके ऊपर? खाँड कहाँ रखवाई है, गोदाम में न? देखो, तालियाँ अपने पास ही रखना। न हो तो मुझे दे जाओ।

मुनीम—

सेठजी, सुन्दरलाल के लिए क्या हुक्म है। रुपए का इन्तजाम करूँ? बहुत थोड़ा बखत है। (सेठ की ओर देखता है) पन्द्रह हज़ार तिजोरी में अभी रखकर आया हूँ।

विसाखा०—

दस हजार! न कम न थोड़ा। अरे और कोई इन्तजाम नहीं हो सके है मुनीमजी! पुलिस को खबर क्यों न कर दो!

मुनीम—

पुलिस भी क्या कर लेगी सेठजी, पुलिस भी तो डरे है। और उसे क्या मालूम नहीं है? पर वह करे तब तो! सेठजी मैं तो आप को सलाह न दूँगा कि आप और कोई इन्तज़ाम करें। नहीं तो आप लड़के से हाथ धो बैठेंगे। न करे ईश्वर?

राजो की मा—

तुम किस संसै में पड़े हो मुनीमजी! लो, मेरा गहना ले जाओ।

(उतारकर सामने रख देती है) लो मेरे लड़के को ला दो। चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।

विसाखा०

क्यों सब मेरे प्रान खाये जाओ हो। गहना भी कौन घर का नहीं है।

मुनीम—

सेठजी देर हो रही है, हुक्म दो।

राजो की मा—

कह तो रही हूँ, पहले जाओ। पठानों को दे देना।

विसाखा०—

क्या करूँ मैं फिर। मुनीमजी, अलीबकस अपने गहने छुड़ा ले गया क्या ?

मुनीम—

देर हो रही है सेठजी ! खैबर फाटक पहुँचना है। क्या हुक्म है ?

विसाखा०—

(दस हजार का ख्याल आते ही फिर बेसुध-सा होकर लेट जाता है।)

मुनीम—

क्या आज्ञा है सेठजी, इसीलिए जल्दी कर रहा हूँ, दुकान से कुछ आदमी साथ ले लूँगा।

राजो की मा—

अरे बोल तो दो। न बोलो। मुनीम जी, (अकड़ कर) ले

आओ रुपया। मैं क्या घर की, दुकान की कोई भी नहीं हूँ ? जाओ देर न करो। हे भगवान् !

मुनीम—

जो हुक्म, (चला जाता है।)

राजो—

(मा से) अब भाई आ जायगा मा !

मा—

हाँ बेटी, लेने गये हैं मुनीमजी। भगवान् का नाम ले, सुंदर राजी-खुशी घर लौटे।

विसाखा०—

(एकदम चेतन-सा उठकर) मुनीमजी गये ? राजो, कहाँ गये ?

राजो—

हाँ गये, चाच्चा जी !

विसाखा०—

घर बरबाद कर डाला। क्या से क्या हो गया ! लड़का कपूत निकला। हा ! कैसे मैंने पैसा कमाया। दस हज़ार ! हाय राम रे ! (फिर लेट जाता है) अरी राजो की मा, मैं मरा !

राजो की मा—

कहूँ हूँ कौन बड़ी रकम है। घर बच्चा आ जाय तो और हो जायँगे रुपए। परमात्मा ने सब कुछ तो...हे भगवान् दया करो। तुम इतनी चिन्ता क्यों करो हो ?

विसाखा०—

चिन्ता न करूँ ? (बैठकर) खून की कमाई है, खून की ! आज चालीस साल से लगातार दिन-रात एक करके रुपया कमाया। (लेट जाता है)

राजो की मा—

कमाया है तो क्या फायदा ! न तीरथ, न जप, न तप, न बर्त। कभी हरद्वार भी न ले गये। मैं तो तुम्हारा पैसा जानती ही नहीं। चार कोठियाँ हैं और हम इसी गली में पड़े सड़ रहे हैं। आज तीन-चार लाख रुपए के मालिक हो। एक पैसा भी कभी दान न किया। ऐसा रुपया किस काम का ?

विसाखा०—

(उठकर) आग लगा दे घर में ! मुझे क्या ? मुनीम ने आज की बिक्री का कोई हिसाब ही नहीं दिया। बेईमान हो गया है। हे रामजी, (लेट जाते हैं) दस हज़ार रुपया इस नालायक के... मुनीम कहाँ गया है राजो ?

राजो की मा—

और रुपया होता ही किस लिए है ? इसमें सुन्दर का क्या अपराध है भला ?

विसाखा०—

मुनीम कहाँ गया ? शायद उगराही करने गया होगा। हे राम-जी, दया करो ! (लेट जाता है।)

[सुन्दरलाल और मुनीम का प्रवेश ।
राजो की मा सुन्दरलाल को देखकर फूट फूट
कर रोने लगती है। राजो भाई से लिपट
जाती है । लड़का दौड़कर पहले विसाखा-
राम, फिर अपनी मा के पैर छूता है ।]

विसाखा०—

(पुत्र को देखकर) आगया रे ! बड़ी खुशी हुई ।

राजो की मा—

आज बेटे को देखकर छाती ठंडी हुई । (उससे लिपट जाती है) मेरी आँखों के तारे !

राजो—

मेरे भैया ! उसके गले से लिपट जाती है ।)

राजो की मा—

कैसा दुबला हो गया इतने ही दिन में !

सुन्दर०—

हां मा ! भगवान् इन राक्षसों के पंजे में न डाले । देख, मार-मार कर तमाम देह सुजा दी है। (देह दिखाकर) हड्डी-हड्डी दुख रही है ।

विसाखा०—

बड़ा अच्छा हुआ बेटा ! कैसे आये ? क्या वैसे ही उन्होंने छोड़ दिया ? मुनीमजी, आज उगराही में क्या मिला ?

सुन्दरलाल—

(मुनीमजी की ओर देखकर) दस हज़ार रुपए दिये थे न !

मुनीम—

(घबरा कर) हाँ, सेठानी जी ने हुक्म दिया था न !

विसाखा०—

क्या पूरे दस हज़ार !

[एकदम धड़ाम से तकिये पर गिर पड़ता है। सुन्दरलाल, मुनीम, राजो विसाखाराम की ओर देखते हैं।]

राजो की मा—

(सुन्दरलाल को थपथपाती हुई) इन्हें नींद आ गई है बेटा, आओ चलें।

पर्दा गिरता है।